मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 34 • वर्ष 4 • अंक 7 • सितम्बर 2014 • पाँच रुपये • 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

शहीद-ऐ-आज़म भगतसिंह के 108वें जन्मदिवस (28 सितम्बर) के अवसर पर 9

आधुनिक संशोधनवाद के विरुद्ध संघर्ष को दिशा देने वाली 'महान बहस' के 50 वर्ष 11

इस्लामिक स्टेट (आईएस): अमेरिकी साम्राज्यवाद का नया भस्मासुर 13

पूँजीपतियों के मुनाफ़े को बेरोक-टोक बनाने और मज़दूर वर्ग के प्रतिरोध को तोड़ने के लिए

नरेन्द्र मोदी की रणनीति क्या है?

नरेन्द्र मोदी की सरकार ने अपने पहले 100 दिनों में ही दिखला दिया है कि वह चुनावों से पहले किसके "अच्छे दिनों" की बात कर रही थी। 100 दिनों के भीतर महँगाई, बेरोज़गारी और ग़रीबी के बारे में मोदी सरकार अपने वायदों को कचरा पेटी के हवाले कर चुकी है। मोदी के सत्ता में आने के बाद से महँगाई में कमी आने की बजाय वास्तव में और बढ़ोत्तरी हुई है। सरकार बनते ही मोदी ने हर नये प्रधानमन्त्री की तरह देश की आम मेहनतकश जनता को "सख़्त क़दमों" के लिए तैयार हो जाने की चेतावनी दे दी थी! कुछ ही दिनों में मोदी ने ग़ज़ब की फुर्ती दिखलाते हुए बता भी दिया कि सख़्त क़दमों से उसका क्या मतलब है। सत्ता में आने के चन्द दिनों बाद मोदी सरकार ने स्पष्ट किया कि श्रम क़ानूनों में संशोधन करना उसकी प्राथमिकताओं में से एक है। इसके अतिरिक्त, रेल का भाड़ा बढ़ाया जाना, पेट्रोलियम उत्पादों से सब्सिडी हटाने की तैयारी, तमाम सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के निजीकरण की तैयारी, अमीरज़ादों पर लगने वाले करों को घटाना और ग़रीबों पर अप्रत्यक्ष करों का दबाव बढ़ाना, और पूँजीपतियों के लिए हर प्रकार की छूट, सुविधा और रियायत का इन्तज़ाम करना। लेकिन इसके साथ ही मोदी सरकार कुछ दिखावटी क़दम और साथ ही जनता की एकजुटता को तोड़ने के क़दम भी उठा रही है। ऐसे में, मज़दूर वर्ग के लिए यह समझना ज़रूरी है कि मोदी की यह फासीवादी सरकार, जो कि मज़दूरों की सबसे बड़ी दुश्मन है, वास्तव में मज़दूर वर्ग को लूटने और आवाज़ उठाने पर दबाने-कुचलने के लिए क्या रणनीति अपना रही है; आख़िर मोदी सरकार की पूरी रणनीति क्या है? क्योंकि तभी मज़दूर वर्ग को भी मोदी सरकार की घृणित चालों का जवाब देने के लिए गोलबन्द और संगठित किया जा सकता है।

सम्पादक मण्डल

मोदी सरकार की पहली चाल : श्रम क़ानूनों को बदलकर मज़दूर वर्ग पर ख़तरनाक हमला

सत्ता में आने के कुछ ही दिनों के भीतर मोदी सरकार ने तमाम बुनियादी श्रम क़ानूनों में ऐसे संशोधनों की तैयारी कर ली है जिनके बाद उन श्रम क़ानूनों का बचा-खुचा असर भी ख़त्म हो जायेगा। वैसे हम मज़दूर जानते हैं कि पहले भी श्रम क़ानूनों का कोई विशेष अर्थ नहीं था और ये श्रम क़ानून बस क़ानून की पोथियों की शोभा ही बढ़ाते थे। लेकिन यह भी सच है कि यदि कहीं मज़दूर अपने जुझारू आन्दोलन खड़े करते थे, तो कई बार इन श्रम क़ानूनों को लागू करने के लिए मालिकों पर दबाव भी बना देते थे, और कभी-कभी तो इन्हें लागू करने पर भी मजबूर कर देते थे। इसके अलावा, इन श्रम क़ानूनों के कारण मालिकों को बेधड़क मुनाफ़ा लूटने और मज़दूरों की हड्डियों को गलाकर अपनी तिजोरी भरने में कभी-कभार कुछ दिक़्क़त पेश आती थी। इन श्रम क़ानूनों के कारण ही मालिकों को श्रम विभाग के लेबर व फ़ैक्टरी इंस्पेक्टरों व अन्य अधिकारियों को घूस देनी पड़ती थी; इन श्रम क़ानूनों के कारण ही मालिकों को अपने कारख़ाने में मनचाहे तरीके से तालाबन्दी करने में दिक्कत आती थी; साथ ही, मज़दूरों के आन्दोलन और दबाव का डर भी कहीं न कहीं उनके दिल में बैठा रहता था। मोदी ने आते ही पूँजीपतियों के सबसे वफ़ादार मुलाज़िम के समान पूँजीपति वर्ग के रास्ते से श्रम क़ानूनों के 'स्पीड ब्रेकर' को हटाने का काम किया है।

मोदी सरकार ने इस मामले में विश्व पूँजी और देशी पूँजी की ज़रूरतों का ख़्याल रखा है। इन ज़रूरतों के बारे में विश्व बैंक, भारतीय पूँजीपतियों के मंच फिक्की, सीआईआई आदि अक्सर ही बात करते रहते हैं। मिसाल के तौर पर, इनका कहना है कि चूँकि संगठित क्षेत्र के मज़दूरों को श्रम क़ानूनों की सुरक्षा प्राप्त है, इसलिए संगठित क्षेत्र में रोज़गार नहीं पैदा हो रहे हैं! इन पूँजीपतियों और उनके भोंपुओं का कहना है कि संगठित क्षेत्र में मालिकों को जब चाहे कारख़ाना बन्द करने की इजाज़त होनी चाहिए और उसके लिए सरकार से इजाज़त लेने की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए; इनका कहना है कि मज़दूरों को जब चाहे रखने और जब चाहे निकाल देने की सुविधा मालिकों और प्रबन्धन के पास होनी चाहिए क्योंकि इससे निवेश के लिए पूँजीपति प्रोत्साहित होंगे। इनकी यह भी सिफ़ारिश है कि ट्रेड यूनियनों के कारण उद्योग जगत को बढ़ावा नहीं मिलता इसलिए ट्रेड यूनियन क़ानून को इस प्रकार बदल दिया जाना चाहिए कि ट्रेड यूनियनों

(पेज 14 पर जारी)

प्रधानमन्त्री जन-धन योजना से मेहतनकशों को क्या मिलेगा?

नरेन्द्र मोदी ने अपने चुनावी प्रचार के दौरान जनता को महँगाई, बेरोज़गारी और भ्रष्टाचार से मुक्ति दिलाने के लम्बे-चौड़े वायदे किये थे। लेकिन मोदी के प्रधानमन्त्री बनने के तीन महीने बीतने के बाद हालत यह है कि आम मेहनकश जनता की समस्याएँ कम होना तो दूर बढ़ती ही जा रही हैं। इस बीच जनता में बढ़ते असन्तोष को थोड़ा काबू में लाने के लिए मोदी ने ग़रीबों के लिए बैंक खाते खुलवाने का लुकमा फेंका है। 28 अगस्त को मोदी ने ताम-झाम के साथ 'प्रधानमन्त्री जन-धन योजना' नामक एक नयी योजना की औपचारिक शुरुआत की जिसके तहत अगले साल 26 जनवरी तक पूरे देश में 7.5 करोड़ नये बैंक खाते खुलवाने का लक्ष्य रखा गया है। इस योजना को लागू हाने से मोदी के शब्दों में 'वित्तीय छुआछूत' दूर होगा और 'वित्तीय समावेशन' को बढ़ावा मिलेगा। इस योजना के तहत खुलने वाले बैंक खाते ज़ीरो बैलेंस खाते होंगे एवं उनमें 30,000 रुपये का जीवन बीमा, 1 लाख रुपये का दुर्घटना बीमा मुफ़्त में मिलेगा और 5,000 रुपये की ओवरड्राफ्ट सुविधा भी होगी।

इस योजना की मीडिया में जिस तरीके से हवा बनायी गयी उससे तो ऐसा लगता है मानो इसके लागू होते ही ग़रीबों और मेहनतकशों की ज़िन्दगी में कायाकल्प हो जायेगा। लेकिन मीडिया की हवाबाज़ी से ध्यान हटाकर आइये इस प्रश्न पर संजीदगी से विचार करते हैं कि इस योजना के लागू होने से मेहतनकशों की ज़िन्दगी में क्या बेहतरी आयेगी और क्या वास्तव में इससे वित्तीय समावेशन हो पायेगा?

इस योजना के पैरोकार तथाकथित वित्तीय छुआछूत की समस्या यानी ग़रीबों और मेहतनकशों तक वित्त की पहुँच न होने का मुख्य कारण यह बताते हैं कि ग़रीबों के पास बैंक खाते नहीं होते। अत: उनके हिसाब से यदि ग़रीबों और मेहतनकशों के बैंक खाते खुलवा दिये जायें तो यह समस्या दूर हो जायेगी और वित्तीय समावेशन हो जायेगा। इस तरह के हवाई समाधान वही बता सकता है या ऐसे सरलीकृत समाधान पर वही लट्टू हो सकता है जिसका ग़रीबों और मेहतनकशों की ज़िन्दगी से दूर-दूर तक कोई वास्ता न हो और जिसका ग़रीबों की समस्याओं के बारे में ज्ञान बस मीडिया की ख़बरों पर आधारित हो। ग़रीबों और मेहनतकशों की ज़िन्दगी से सरोकार रखने वाला कोई भी व्यक्ति यह जानता है कि उनकी असली समस्या तो यह है कि उनकी आमदनी ही इतनी कम होती है कि यदि उनके बैंक खाते खुल भी जायें तो उसका कोई ख़ास मतलब ही नहीं होता। उनकी आमदनी तो बस उनके परिवार का बमुश्किल पेट भरने में ही ख़त्म हो जाती है। 2004 में भारत सरकार द्वारा गठित अर्जुन सेनगुप्ता समिति की रिपोर्ट में यह बताया गया था कि देश की 77 फ़ीसदी आबादी रोज़ाना बीस रुपये या उससे भी कम पर गुज़ारा करती है। इस पूरी आबादी के यदि बैंक खाते खुलवा भी दिये जायें तो इससे उनकी मूल समस्या यानी आमदनी की कमी तो हल नहीं होने वाली।

यह बात सच है कि आज़ादी के 67 साल बीतने के बावजूद देश के 40 फ़ीसदी परिवार और 60 फ़ीसदी से ज़्यादा लोग बैंकिंग की सुविधा से महरूम हैं जो अपनेआप में इस देश में विकृत पूँजीवादी विकास को दर्शाता है। रिज़र्व बैंक के आँकड़े के अनुसार इस देश में कुल 90 करोड़ बैंक खाते हैं। लेकिन 2011 की जनगणना के अनुसार इस देश में बैंकिंग सुविधा की पहुँच महज़ 30 करोड़ लोगों तक है। यानी कि कुछ लोगों के कई बैंक खाते हैं और तमाम लोगों के पास एक भी खाता नहीं है। यह भी सच है कि गाँवों के ग़रीब किसान, कारीगर और खेतिहर मज़दूर स्थानीय महाजनों या माइक्रो फाइनेंस कम्पनियों के भारी

(पेज 12 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

इस लूटतन्त्र के सताये एक नाबालिग मज़दूर की कहानी

मै पिण्टू माधोपुरा विहार का रहने वाला हूँ, अपने घर में बहन-भाई में सबसे बड़ा मैं ही हूँ। मेरी उम्र 15 साल है। मुझसे छोटी मेरी दो बहने हैं। 2010 मे मेरे पापा गुजर गये, तो अब मेरी माँ व हम तीन भाई-बहन ही हैं। ग़रीबी तो पहले से ही थी, लेकिन पापा के गुजरने के बाद दुनिया के तमाम नाते-रिश्तेदारों ने भी हमसे नाता तोड़ लिया। गाँव के कुछ लोग गुड़गाँव मे काम करते थे तो मेरी माँ ने बड़ी मुसीबत उठाकर 4 रुपये सैकड़ा पर 1000 रुपये लेकर व जो काम करते थे उनसे हाथ जोड़कर मुझे जैसे-तैसे गुड़गाँव भेज दिया। क्योकि घर मे सबसे बड़ा मै ही था और गाँव पर भी मेरी और मै मज़दूरी करके ही पेट पाल रहे थे। खेत व जमीन मेरे पास कुछ नही है, बस रहने के लिए गाँव में एक झोपडी है।

2012 में मैं गुड़गाँव आ गया बहुत फ़ैक्टरियों में चक्कर लगाये मगर काम नहीं मिला क्योंकि मै अभी बच्चा था। 10-15 दिन में वो सारा रुपया खर्च हो गया जो माँ ने दिया था। मुझे समझ मे नही आ रहा था मैं क्या करूँ? गुड़गाँव में मेरे कमरे के पड़ोस का आदमी दिहाड़ी (बेलदारी) पर जाता था। उससे हाथ-निहोरे करने पर उसने मुझे अपने ठेकेदार से मिलवा दिया। मेरी उम्र कम थी इसलिए ठेकेदार ने बड़ा एहसान दिखाकर मुझे काम पर रखा लिया और रोज के 150 रुपये देने का तय किया जबकि 2012 में सामान्य मज़दूरी 300 के लगभग थी। सुबह 8:30 बजे से शाम 7 बजे तक मुझे 150 रु. मिलने लगे। तब से आज तक मैं बेलदारी ही कर रहा हूँ। अब जुलाई 2014 में मुझे 250 रु. मिल रहे है। सामान्य मजदूरी 350-400 रु. है। पूरे महीने 10-12 घण्टे काम करने के बाद मुझे 7500 रु. तक मिलते है और अगर काम न हो या छुट्टी हो जाए तो रोज के 250 रु. कट जाते है। बड़ी मुश्किल से अपना खर्च निकालकर मैं अपनी माँ व दो बहनों के ख़र्चो के लिए महीने में उसे 4 हज़ार रुपये भेज पाता हूँ। मैं अपनी बहनों की शादी कैसे करूंगा, अगर हारी-बिमारी होगी तो क्या होगा और किसी की जिन्दगी का कोई भरोसा भी तो नहीं कब तक कौन जिन्दा रहेगा। यही तमाम चिन्ताएँ मुझे लगातार सताती रहती है। एक दिन काम करने के दौरान मुझे भैया मिले जिन्होंने मेरी समस्या भी सुनी और मुझे प्यार से समझाया भी कि तुम फालतू में अकेले क्यों परेशान हो। अरे तुम्हारी माँ और बहन लूली-लंगड़ी, अपाहिज तो है नहीं, फालतू में उनको गाँव में रख छोड़े हो, उनको यहाँ गुड़गाँव बुलाओ। तुम तो कमा ही रहे हो। मम्मी को भी किसी कम्पनी में 5000 रुपये में काम मिल जायेगा और अपनी बहनों को यहाँ किसी अच्छे स्कूल में नाम लिखवा देना। तुम्हारा पूरा परिवार तुम्हारे साथ रहेगा।

उनकी यह बात मुझे बहुत अच्छी लगी मैंने उनका पता, फोन नम्बर ले लिया और मैं लगातार उनके सम्पर्क में हूँ। और अब मैंने यह तय कर लिया है कि अगले महीने मैं अपनी माँ और दोनों बहनों को गुड़गाँव ले आऊंगा। हम सब मिलजुल कर संघर्ष करेंगे और ज़िन्दगी को बदलने की लड़ाई लड़ेंगे। मुझे पढ़ने-लिखने का मौका कभी जिन्दगी में नहीं मिला इसलिए अपनी ये कहानी मैं इन्ही बिगुल वाले भैया से लिखवा रहा हूँ।

– पिंटू, गुड़गाँव

मज़दूर बिगुल के साथियों से मैं ये कहना चाहता हूँ कि मज़दूरों के अधिकारों के बारे में जानकारी देने वाले सरल भाषा में कुछ लेख हर बार दो जिससे हमें उनके बारे में प्रचार करने और संगठन बनाने में आसानी हो। जानकारी न होने से मालिक और दलाल नेता हमें आसानी से घुमा देते हैं।

– राजू शर्मा, नोएडा

हमें एकजुट होना होगा और मज़दूर राज कायम करना होगा

मेरे मज़दूर भाइयो मैं निर्माण क्षेत्र से जुड़ा मज़दूर हूँ। हमारा काम गाड़ियों से रेती, बजरी, सीमेण्ट आदि उतारना और लादना होता है। काम के दौरान न तो किसी भी प्रकार का सुरक्षा इन्तजाम होता है और रोज़-रोज़ काम का मिलना भी निश्चित नहीं होता। बहुत बार खाली हाथ भी घर लौटना पड़ जाता है। बिगुल अख़बार पढ़ने के बाद मुझे पता चला कि हम दुनियाभर के मज़दूरों को क्यों संगठित होना चाहिए। क्योंकि एकजुट होकर ही हम मालिक वर्ग को अपनी माँगों पर झुका सकते हैं। हम नरवाना के मज़दूरों ने अप्रैल महीने में हड़ताल की थी जो जीत के साथ ही ख़त्म हुई थी। इसी समय हमने निर्माण मज़दूर यूनियन का भी गठन किया था। हम 'मज़दूर बिगुल' के लेखों को चाव से पढ़ते हैं साथ ही इससे सीख भी लेते हैं तथा अपने अन्य मज़दूर भाइयों को भी इसके बारे में बताते हैं। साथियो मैं आप सबसे यही कहना चाहूँगा कि हमें एकजुट होना होगा और मज़दूर राज कायम करना होगा तभी हम अपने दुखों से छुटकारा पा सकते हैं।

– इन्दर,
निर्माण मज़दूर, नरवाना, हरियाणा

काम की तलाश में

काम की तलाश में घूम रहे हैं लोग,
एक मौका पाने को तरस रहे हैं लोग,
फ़ैक्टरियों, दुकानों, कारख़ानों मे,
हर जगह पूछ रहे हैं लोग,
कि क्या कोई जगह ख़ाली है,
हर जगह यही जवाब मिलता है,
कोई जगह ख़ाली नहीं है।
सड़कों, चौराहों, नुक्कड़, गलियों व,
फ़ैक्टरी इलाकों मे घूमते हुए मिल जाते हैं लोग,
काम की तलाश में बड़े परेशान हैं लोग,
आखिर समझ में नही आता कि इतनी बड़ी,
मज़दूर आबादी का ही भाग्य क्यों मारा जाता है,
भगवान इन्हीं लोगों से क्यों नाराज रहता है,
एकबारगी तो मन बगावत करके कहता है,
कि कोई भगवान-अगवान नहीं होता।
बड़े परेशान हैं लोग,
काम की तलाश मे घूम रहे हैं लोग,
एक-दूसरे की जाति-धर्म को दोष देते हैं लोग,
भाई-भतीजे, बुजुर्गो-रिश्तेदारों को दोष देते हैं लोग,
ऐसा होता, ऐसा न होता,
तो बहुत अच्छा होता कहते हैं लोग,
एकबारगी तो मन कहता है,
कि क्या बहुत नादान या मूर्ख हो गये हैं लोग,
जो यह नहीं समझ पा रहे हैं कि
यह पूँजी की व्यवस्था है,
इस बेरोज़गारी की ज़िम्मेदार यह व्यवस्था है,
जल्द से जल्द बदल डालें इस व्यवस्था को,
नही तो यूँ ही परेशान होकर काम की तलाश में,
घूमते रहेंगे हम सब लोग।

***– आनन्द**, गुड़गाँव*

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।"
– लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।
यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। हम बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर उपलब्ध कराने के लिए काम कर रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।
2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।
3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।
4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी- चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।
5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – रु. 5/- वार्षिक – रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता - 2000/-

मोदी सरकार द्वारा श्रम क़ानूनों में बदलाव की कवायद के विरोध में संसद भवन पर मज़दूरों का जुझारू प्रदर्शन!

संसद के पिछले सत्र में मोदी सरकार द्वारा प्रस्तावित श्रम क़ानूनों में बदलाव के विरोध में 20 अगस्त को बिगुल मज़दूर दस्ता और देश के अलग-अलग इलाकों से आये विभिन्न मज़दूर संगठनों तथा मज़दूर यूनियनों ने दिल्ली के संसद मार्ग तक मार्च किया और प्रधानमन्त्री का पुतला दहन किया। इस प्रदर्शन में मज़दूरों ने बड़ी संख्या में भागीदारी की।

ज्ञात हो कि गत 31 जुलाई को मोदी सरकार द्वारा तमाम श्रम क़ानूनों को ढीला और कमज़ोर करने के लिए प्रस्ताव पेश किया गया जिसमें फ़ैक्टरी ऐक्ट 1948, ट्रेड यूनियन ऐक्ट 1926, औद्योगिक विवाद अधिनियम 1948, ठेका मज़दूरी क़ानून 1971, एप्रेंटिस ऐक्ट 1961 शामिल हैं। जहाँ पहले फ़ैक्टरी ऐक्ट 10 या ज़्यादा मज़दूरों (जहाँ बिजली का इस्तेमाल होता हो, तथा 20 या ज़्यादा मज़दूरों (जहाँ बिजली का इस्तेमाल न होता हो वाली फ़ैक्टरियों पर लागू होता था, अब इसे क्रमश: 20 और 40 मज़दूरों वाले कारख़ानों के लिए प्रस्तावित किया गया है। यानी उससे कम मज़दूरों वाले कारख़ानों पर कारख़ाना क़ानून लागू ही नहीं होगा। इस तरह अब मज़दूरों की बहुसंख्या को क़ानूनी तौर पर मालिक हर अधिकार से वंचित कर सकता है। इसके अलावा सरकार एक तिमाही में ओवरटाइम की सीमा को 50 घण्टे से बढ़ाकर 100 घण्टे करने की तैयारी में है। वहीं दूसरी तरफ मज़दूरों के लिए यूनियन बनाना और भी मुश्किल कर दिया गया है। पहले किसी भी कारख़ाने या कम्पनी के 10 प्रतिशत मज़दूर मिलकर यूनियन पंजीकृत करवा सकते थे लेकिन अब यह संख्या 30 प्रतिशत करने का प्रस्ताव है। ठेका मज़दूरी क़ानून, 1971 अब सिर्फ़ 50 या इससे ज़्यादा मज़दूरों वाली फ़ैक्टरी पर लागू करने की बात कही गयी है। औद्योगिक विवाद क़ानून में बदलाव किया गया है जिससे अब 300 से कम मज़दूरों वाली फैक्टरी को मालिक कभी भी बन्द कर सकता है और इस मनमानी बन्दी के लिए मालिक को सरकार या कोर्ट से पूछने की कोई ज़रूरत नहीं है। साथ ही फ़ैक्टरी से जुड़े किसी विवाद को श्रम अदालत में ले जाने के लिए पहले कोई समय-सीमा नहीं थी, अब इसके लिए भी तीन साल की सीमा का प्रस्ताव लाया गया है। एप्रेंटिस ऐक्ट में संशोधन कर सरकार ने मालिकों को छूट दे दी है कि वे बड़ी संख्या में स्थायी मज़दूरों की जगह ट्रेनी मज़दूरों को भर्ती करके काम करायें। साथ ही किसी भी विवाद में अब मालिकों के ऊपर से किसी भी

किस्म की क़ानूनी कार्रवाई का प्रावधान हटाने की बात कही गयी है।

20 अगस्त को सुबह से ही राजधानी तथा अन्य इलाकों से आये मज़दूर जन्तर-मन्तर पर इकट्ठा होने लगे थे तथा सभा चल रही थी। इसके बाद भारी संख्या में मज़दूर संसद की ओर बढ़े जहाँ पुलिस ने उन्हें रोक दिया। मोदी सरकार के ख़िलाफ़ ज़ोरदार नारों के बीच मज़दूरों ने प्रधानमंत्री का पुतला फूँककर अपना आक्रोश प्रकट किया।

प्रदर्शन में आये मज़दूरों को सम्बोधित करते हुए **बिगुल मज़दूर दस्ता** की शिवानी ने कहा कि मोदी सरकार द्वारा श्रम क़ानूनों में बदलाव के पीछे वही घिसे-पिटे तर्क दिये जा रहे हैं जो 1990 के दौर में उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों को लागू करते समय दिये गये थे, यानी ये बदलाव "रोज़गार" पैदा करने तथा मज़दूरों की दशा सुधारने और सुरक्षा बढ़ाने के नाम पर किये गये हैं। वैसे 24 वर्षों से जारी उदारीकरण-निजीकरण की जन विरोधी नीतियाँ जनता के सामने जग-जाहिर हैं। इन वर्षों में अमीरी-ग़रीबी की खाई लगातार गहराती जा रही है। बेरोज़गार नौजवानों की फौज सड़कों पर खड़ी है। आज बेहतर शिक्षा-स्वास्थ्य-भोजन-आवास जैसी बुनियादी सुविधाएँ लगातार मेहनतकश आबादी से छीनी जा रही हैं। असल में श्रम क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ाने का मकसद रोज़गार बढ़ाना नहीं बल्कि पूँजीपतियों को मज़दूरों को लूटने के लिए और ज़्यादा छूट देने की है तभी इस बजट में पूँजीपति घरानों को 5.32 लाख करोड़ रुपये की भारी छूट दी गयी है। वैसे इसकी असल शुरुआत तो राजस्थान में वसुंधरा सरकार ने दो महीने पहले ही कर दी थी, जो मॉडल अब केन्द्र सरकार लागू कर रही है।

नौजवान भारत सभा के फेबियन ने अपनी बात में कहा कि मोदी सरकार की पक्षधरता स्पष्ट हो गयी है कि वह किसके पक्ष में खड़ी है। आज इन श्रम क़ानूनों में बदलाव का प्रस्ताव देश के विकास के नाम पर किया जा रहा है लेकिन सच्चाई यह है कि देश की एक बड़ी आबादी के सामने आज भी अस्तित्व का प्रश्न है। **दिशा छात्र संगठन** की वारुणि ने कहा कि यह प्रस्ताव मज़दूरों को मालिकों के रहमोकरम पर छोड़ देने के लिए लाया गया है। केन्द्र सरकार को सबसे पहले तो यह सुनिश्चित करना चाहिए कि देश के हर नागरिक को संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकारों में से अहम अधिकार सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अधिकार सुनिश्चित करना चाहिए जबकि यह सरकार देश की बड़ी आबादी से उनका रहा-सहा हक़ भी छीन रही है।

120 दिनों से भिवाड़ी में अपनी माँगों को लेकर संघर्ष कर रहे **श्रीराम पिस्टन एण्ड रिंग्स कामगार यूनियन** के महेश ने कहा कि इस पूरी लड़ाई में हमारा यही अनुभव रहा कि सरकार ने सिर्फ़ मालिकों की सुनी है और हमारी माँगों के प्रति ग़ैरजिम्मेदाराना रवैया रहा है। लेकिन हम तब तक लड़ते रहेंगे जब तक हमारी माँगें नहीं मानी जातीं।

गुड़गाँव मज़दूर संघर्ष समिति के अजय ने कहा कि मज़दूर अपनी मेहनत से सबकुछ पैदा करते हैं। इसलिए यह लड़ाई पूरे मज़दूर वर्ग की लड़ाई है। यह तबतक नहीं रुकेगी जबतक हमें हमारे हक़ नहीं मिलते। **निर्माण मज़दूर यूनियन नरवाना** (हरियाणा) के रमेश ने कहा कि यह सरकार का मज़दूर विरोधी क़दम है। इसका विरोध पुरजोर ढंग से किया जाना चाहिए।

प्रदर्शन में **करावल नगर मज़दूर यूनियन** की महिला मज़दूरों ने बड़ी संख्या में भागीदारी की और गीत प्रस्तुत किया। इन सारे बदलावों के मद्देनजर मज़दूरों ने प्रदर्शन कर अपना विरोध दर्ज किया और केन्द्रीय श्रम मन्त्री तथा प्रधानमन्त्री को ज्ञापन सौंपा। देश भर से आये मज़दूर संगठनों और छात्र युवा संगठनों के प्रतिनिधियों ने अपनी बात रखी। इनमें **उत्तर पश्चिमी दिल्ली मज़दूर यूनियन, स्त्री मज़दूर संगठन दिल्ली, गरम रोला मज़दूर एकता समिति वजीरपुर, गुड़गाँव मज़दूर संघर्ष समिति, करावल नगर मज़दूर यूनियन, श्रीराम पिस्टन एण्ड रिंग्स कामगार यूनियन भिवाड़ी, निर्माण मज़दूर यूनियन नरवाना (हरियाणा), उद्योगनगर मज़दूर यूनियन, मंगोलपुरी मज़दूर यूनियन, दिल्ली मेट्रो रेल ठेका कामगार यूनियन, दिल्ली कामगार यूनियन, दिशा छात्र संगठन, विहान सांस्कृतिक टोली** और **नौजवान भारत सभा** शामिल थे।

– बिगुल संवाददाता

प्रदर्शन की कुछ झलकियाँ

कारख़ाना इलाक़ों से

हीरो मोटोकॉर्प के स्पेयर पार्ट्स डिपार्टमेंट से 700 मज़दूरों की छंटनी!

राष्ट्रीय स्तर पर सारे मालिकान मिलकर एक ही नीति का पालन कर रहे हैं, कि मज़दूरों को कम से कम कीमत देकर ज़्यादा से ज़्यादा मेहनत कैसे निचोड़ी जाये, और इस नीति को लागू करने में पूँजीपतियों के हित में चुनावी दल्ले, नेता-मन्त्री, कोर्ट-कचहरी, पुलिस-फौज तो हमेशा सर झुकाकर खड़े ही रहते हैं। इसके अलावा नकली लाल झण्डे वाले चुनावी मदारी भी आज मुँह पर पट्टी लगाकर खामोश बैठे हैं, ये दल्ले भी मज़दूरों की ऐसी भयंकर परिस्थितियों मे चुप्पी लगाकर यह साफ ज़ाहिर कर रहे हैं कि वे मालिकों के साथ हैं।

11 अगस्त 2014 को हीरो मोटोकॉर्प की शाखा स्पेयर पार्ट्स डिपार्टमेंट (जो कि हीरो मोटोकार्प कम्पनी के बिल्कुल साथ में ही सेक्टर 34 गुड़गाँव मे स्थित है) मे करीब 700 मज़दूरों को कम्पनी मैनेजमेण्ट ने जबरन रात को 2 बजे फ़ैक्टरी गेट के बाहर निकाल दिया। 700 मज़दूरों को कम्पनी से निकालने के लिए 40 जिप्सी व 2 बसों मे पुलिस भरकर आयी थी।

स्पेयर पार्ट्स डिपार्टमेंट में यही नियम लागू था – छह महीने मज़दूर से काम करवाओ और उसके बाद निकाल दो और अगर कम्पनी मैनेजमेण्ट को ज़रूरत पड़ती तो वह पुराने लड़को को घर से फोन कर बुला लेता भर्ती के लिए। ऐसी हालत में एस.पी.डी में यह 700 मज़दूर कम्पनी प्रबन्धन को बहुत खटक रहे थे जो पिछले 15-16 सालों से काम कर रहे थे। कम्पनी प्रबन्धन ने सभी मज़दूरों को कह दिया कि यह कम्पनी नीमराना जा रही है इसलिए तुम सभी अपना हिसाब ले लो। इस तानाशाही के ख़िलाफ़ मज़दूरों ने अपनी माँग रखी कि हमें नौकरी के डेढ़ लाख रुपये प्रतिवर्ष के हिसाब से भुगतान किया जाये, जिस पर कम्पनी प्रबन्धन ने कान तक नहीं दिया। इसके विरोध में 11 अगस्त को मज़दूर हड़ताल पर बैठ गये। उसी रात 2 बजे कम्पनी प्रबन्धन ने पुलिस बल बुलाकर जबरन मज़दूरों को फ़ैक्टरी गेट के बाहर कर दिया और यह ऐलान किया कि जिसको 10 हज़ार रुपये प्रतिवर्ष के हिसाब से हिसाब लेना हो तो कल आकर हिसाब ले जाये। हीरो मोटोकार्प कम्पनी का एक प्लांट उत्तराखण्ड में दूसरा गुड़गाँव में व तीसरा नीमराना (राजस्थान) में शुरू चुका है। हीरो मोटोकॉर्प के मैनेजमेण्ट की नीति यही है कि मज़दूरों की भर्ती छह महीने के लिए करो इसके बाद निकाल दो।

हीरो मोटोकॉर्प कम्पनी में स्थायी मज़दूरों की ट्रेड यूनियन बनी हुई है जो हिन्द मज़दूर सभा से सम्बन्धित है। इसके अलावा पूरे गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा औद्योगिक क्षेत्र में हज़ारों सदस्यता वाली ट्रेड यूनियनें सीटू, एटक मौजूद हैं, लेकिन इन 700 अस्थायी मज़दूरो को निकाल देने के मुद्दे पर ये बड़े-बड़े मार्का चिपकाये ट्रेड यूनियन वाले चुप्पी लगा गये। इससे यह साफ जाहिर है कि ये सब मज़दूरों और मालिकों के बीच सौदा कराने वाले दलाल हैं।

आज सारे पूँजीपतियों का एक ही नजरिया है। 'हायर एण्ड फायर' की नीति लागू करो यानी जब चाहे काम पर रखो जब चाहे काम से निकाल दो, और अगर मज़दूर विरोध करे तो पुलिस-फौज, बाउंसरों के बूते मज़दूर का दमन करके आन्दोलन को कुचल दो। ऐसे समय अलग-अलग फैक्टरी-कारख़ाने के आधार पर मज़दूर नहीं लड़ सकते और न ही जीत सकते हैं। इसलिए हमें नये सिरे सोचना होगा कि ये समस्या जब सारे मज़दूरों की साझा है तो हम क्यों न पूरे गुड़गाँव से लेकर बावल तक के ऑटो सेक्टर के स्थाई, कैजुअल, ठेका मज़दूरों की सेक्टरगत और इलाकाई एकता कायम करें। असल में यही आज का सही विकल्प है वरना तब तक सारे मालिक-ठेकेदार ऐसे ही मज़दूरों की पीठ पर सवार रहेंगे।

– बिगुल संवाददाता
गुड़गाँव

इलाकाई एकता की वजह से बैक्सटर मेडिसिन कम्पनी के मज़दूरों को मिली आंशिक जीत!

बैक्सटर मेडिसिन अमेरिकी कम्पनी है और यह ख़ासकर किडनी की महँगी दवाएँ बनाती है। इस कम्पनी की पूरे विश्व में लगभग 54 शाखाएँ है, जिसमें से तीन भारत में हैं। एक आई.एम.टी. मानेसर (गुड़गाँव), दूसरी बालुज (महाराष्ट्र) और तीसरी चेन्नई में स्थित है।

मानेसर के प्लाट न.183, सेक्टर 5 में स्थित बैक्सटर मेडिसिन लिमिटेड में लगभग 302 स्थायी मज़दूर हैं। पिछले 11 साल काम कर रहे इन मज़दूरों की तनख्वाह कुछ को छोड़कर बाकी सभी की 8000 रुपये ही है, और जो साल-छह महीने से काम पर लगा है उसकी तनख्वाह 5700 रुपये है। कम्पनी प्रशासन की इन तमाम लूट व अन्यायपूर्ण नीतियों के ख़िलाफ़ मज़दूरों ने यूनियन बनाने का फैसला किया और यूनियन बनाने की प्रक्रिया की लम्बी कार्यवाही के चलते 27 मई 2014 को ए शिफ्ट में ड्यूटी पर आये 17 अगुआ मज़दूरों को कम्पनी प्रशासन ने निलम्बन का पत्र पकड़ा दिया। कम्पनी के इस तानाशाहीपूर्ण रवैये के ख़िलाफ़ मज़दूरों ने संघर्ष का रास्ता चुना और कम्पनी के सारे मज़दूर काम छोड़कर गेट पर धरना देकर बैठ गये।

27 मई के बाद से सभी 300 स्त्री-पुरुष मज़दूरों ने जुझारू संघर्ष किया, गुड़गाँव में ए.एल.सी, डी.एल.सी. व श्रम विभाग में जहाँ भी गुंजाइश हुई हर जगह न्याय की गुहार लगायी, बीच मे बैक्सटर के मज़दूरों की यूनियन का पंजीकरण भी हो गया और 10 जून को उसका रजिस्ट्रेशन नम्बर भी आ गया और मज़दूरों ने एक नये वेग से कम्पनी गेट पर यूनियन का झण्डा गाड़कर संघर्ष की शुरुआत की। लेकिन फिर उसके बाद संघर्ष की गति मन्द होने लगी। धरना स्थल भी खाली रहने लगा। जैसा कि बिगुल लगातार ये कहता रहा है कि एक फ़ैक्टरी का संघर्ष अकेले में जीता नहीं जा सकता और बैक्सटर कम्पनी में हालात एकदम ऐसे ही दिख रहे थे। 10 जून के बाद से बैक्सटर कम्पनी के मज़दूरों की कोई भी कार्रवाई न के बराबर रही, बैक्सटर के मज़दूरों मे नई जान तब आई जब उनके समर्थन मे 13 अगस्त को ऑटो सेक्टर की लगभग एक दर्जन कम्पनियों के मज़दूरों ने हड़ताल कर दी जिसमें कि हीरो मोटोकार्प व सत्यम ऑटो जैसी अन्तरराष्ट्रीय कम्पनियों के मज़दूर भी शामिल थे।

13 अगस्त को इन तमाम ऑटो सेक्टर की कम्पनियों के मज़दूरों ने एक दिवसीय हड़ताल की व अनिश्चितकालीन हड़ताल करने की घोषणा की, इन मज़दूरों की वर्ग एकजुटता के चलते, इलाकाई पैमाने के आन्दोलन के चलते पुलिस प्रशासन को मजबूरन हरकत में आना पड़ा, श्रम विभाग को भी मजबूरन कुछ क़दमताल करनी पड़ी और 18 अगस्त को मौखिक रूप से सरकारी प्रशासनिक हस्तक्षेप से कम्पनी प्रशासन पर दबाव बनाया गया और बैक्सटर कम्पनी के मज़दूरों को एक आंशिक जीत मिली। 300 मज़दूरों मे से 166 मज़दूरों को बहाल किया गया। श्रम विभाग व कम्पनी प्रशासन ने लिखित में बहाली का पत्र नही दिया। पर मज़दूरों की इलाकाई एकता के चलते उन्हें यह कार्यवाही करनी पड़ी।

बैक्सटर आन्दोलन में मज़दूरों को मिली जीत ने फिर साबित कर दिया है कि आज उत्पादन प्रणाली में जिस गति से असेम्बली लाइन को तोड़ा जा रहा हैं और मज़दूरों को जिस तरह से बिखरा दिया गया है ऐसे समय मे एक फ़ैक्टरी का मज़दूर अपने अकेले के संघर्ष के दम पर नही जीत सकता। आज मज़दूर सेक्टरवार, इलाकाई एकता क़ायम करके ही कामयाब लड़ाई लड़ सकते हैं। हमें इसीकी तैयारी करनी चाहिए।

– बिगुल संवाददाता
गुड़गाँव

लखनऊ हाईकोर्ट के निर्माणाधीन भवन से गिरकर एक और मज़दूर की मौत

हादसों के नाम पर कब तक होती रहेंगी ऐसी हत्याएँ?

पिछली 4 सितम्बर को लखनऊ के गोमतीनगर में बन रही हाईकोर्ट की नयी इमारत की चौथी मंज़िल से गिरकर एक मज़दूर की मौत हो गयी। बाईस वर्ष का नरेश चौथी मंज़िल पर पत्थर लगा रहा था कि शटरिंग का पट्टा टूट गया और वह नीचे जा गिरा। बुरी तरह घायल नरेश 20 मिनट तक वहीं तड़पता रहा। फिर साथी मज़दूर उसे मोटर साइकिल से राममनोहर लोहिया अस्पताल ले गये, जहाँ 10 मिनट तक उसे डॉक्टरों ने देखा ही नहीं। तब तक वहाँ पहुँचे और भी मज़दूरों के शोर मचाने पर डॉक्टरों ने बिना इलाज किये ही उसे मृत घोषित कर दिया। इसके बाद शव को लेकर मज़दूर हाईकोर्ट परिसर पहुँचे तो गार्डो ने गेट खोलने से इन्कार कर दिया। इसका पता चलने पर पूरे परिसर में मज़दूरों ने काम बन्द कर दिया व इकट्ठा होकर शव को जबरन परिसर में ले गये। मज़दूरों ने बिल्डर व पुलिस को बुलाने की माँग की, ताकि पीड़ित परिवार को मुआवज़ा मिल सके व दोषियों के ख़िलाफ़ एफ़.आई.आर. दर्ज की जा सके। घण्टों इन्तज़ार के बाद भी जब कोई नहीं आया तो मज़दूरों ने शव को सड़क पर रखकर लखनऊ-फ़ैज़ाबाद मार्ग जाम कर दिया। जाम होते ही तुरन्त पहुँची पुलिस ने नीचता की हद दिखाते हुए पाँच हज़ार रुपये मुआवज़े पर समझौते कर लेने का दबाव बनाया। आख़िरकार दोषियों पर कार्रवाई के पुलिस अफ़सरों के आश्वासन पर मज़दूरों ने जाम तो ख़त्म कर दिया, लेकिन उचित मुआवज़े की माँग पर अड़े रहे। इस बीच ठेकेदार और सूपरवाइज़र के गुण्डों ने शव को ही गायब करने का कई बार प्रयास किया, पर वे सफल नहीं हो सके।

हाईकोर्ट के इस निर्माणाधीन भवन का निर्माण उत्तरप्रदेश राजकीय निर्माण निगम द्वारा कराया जा रहा है। सरकारी संस्था होने के बावजूद किसी भी ज़िम्मेदारी से बचने के लिए निगम ने निर्माण के काम को बिल्डरों को सौंप दिया व बिल्डरों ने ठेकेदारों को। ठेकेदार ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने के लिए बिहार, झारखण्ड, राजस्थान व उत्तरप्रदेश के गाँवों से मज़दूर लेकर आते हैं। ये मज़दूर चौबीसों घण्टे कार्यस्थल पर ही रहते हैं, अतः इनके काम के घण्टों की कोई सीमा नहीं होती। ये कम से कम 10 घण्टे काम करते हैं, जो कभी-कभी 15-16 घण्टे हो जाता है। पर इन्हें न्यूनतम मज़दूरी भी नहीं मिलती, ओवरटाइम पर डबल रेट से भुगतान तो बहुत दूर की बात है। ये दूसरी किसी जगह न जा पायें और ठेकेदारों के चंगुल में ही रहे इसलिए इनकी मज़दूरी का कम से कम एक तिहाई रोक लिया जाता है।

यहाँ सैकड़ों मज़दूर काम कर रहे हैं, लेकिन किसी का कोई लिखित ब्यौरा नहीं है। कोई रजिस्टर नहीं है। उन्हें कोई पहचान-पत्र भी नहीं दिया जाता है। ठेकेदार जब तक चाहते हैं, इनसे काम करवाते हैं, जब जी में आता है इन्हें निकाल देते हैं। परिसर में ही टीन-टप्पर डालकर सैकड़ों मज़दूर रहते हैं जहाँ साफ पानी, साफ-सफाई जैसी बुनियादी सुविधाएँ भी नहीं हैं। मज़दूरों को शौचालय के लिए दो किलोमीटर दूर जाना पड़ता है। रात में चाहे जो हो जाये गार्ड गेट नहीं खोलते, जिससे परिसर में गन्दगी फैलती है, इससे होने वाली बीमारियों के शिकार भी मज़दूर ही होते हैं। बरसात में कई मज़दूर यहाँ पर मलेरिया के शिकार हुए, तो दवा-इलाज के बजाय उन्हें घर का रास्ता दिखा दिया गया।

इस परिसर में यह कोई पहली घटना नहीं है, इससे पहले अब तक छह मज़दूर इसी जगह दुर्घटनाओं में अपनी जान गँवा चुके हैं और कई अन्य गम्भीर रूप से घायल हो चुके हैं, लेकिन सुरक्षा के कोई इन्तज़ाम नहीं किये गये। मज़दूरों को हारनेस, सुरक्षा पेटी, हेल्मेट आदि नहीं मिलता और न ही जाल बाँधा जाता है। सुरक्षा इंस्पेक्टर का नाम तो शायद मज़दूरों ने सुना ही न हो। कभी-कभार सुरक्षा के नाम पर जो हेल्मेट मज़दूरों को मिलता है, वह ख़ुद इतना कमजोर होता है कि थोड़ी ऊँचाई से गिरने पर नारियल की तरह टूट जाता है।

ग़ौरतलब है कि जिस जगह हादसों के रूप में अब तक छह हत्याएँ हो चुकी हैं, आने वाले दिनों में हाईकोर्ट के सम्मानित जज महोदय यहीं पर न्याय के सिंहासन पर विराजमान होकर इंसाफ़ करेंगे। परन्तु संविधान में ही दर्ज 260 से ज़्यादा क़ानूनों को मुँह चिढ़ाते यहाँ के हालात व इन हत्याओं पर न्याय के इन ठेकेदारों को साँप सूँघ जाता है। किसी भी जज महोदय ने कभी यह जानने की कोशिश नहीं की कि जिस "न्याय की देवी" के मन्दिर में वे बैठने वाले हैं उसे बनाने वाले मज़दूरों के साथ किस तरह की नाइंसाफ़ी रोज़-रोज़ हो रही है।

बग़ैर किसी संगठन के मज़दूरों की यह स्वतःस्फूर्त पहलक़दमी स्वागत की बात है। वह भी लखनऊ जैसे शहर में जहाँ पर जुझारू मज़दूर आन्दोलनों का कोई इतिहास भी नहीं है। अक्सर देखा गया है कि तत्काल गुस्से के कारण मज़दूर विद्रोह और उग्र प्रदर्शन तो करते हैं पर किसी क्रान्तिकारी राजनीतिक संगठन व दिशा के अभाव में उसे अंजाम तक नहीं पहुँचा पाते हैं। हमें अब अपने गुस्से का सही इस्तेमाल करना होगा

(पेज 5 पर जारी)

दिल्ली इस्पात मज़दूर यूनियन की स्थापना

गरम रोला मज़दूर एकता समिति के नेतृत्व में संगठित हुए मज़दूरों ने अपने संगठन को विस्तारित करते हुए उसे वज़ीरपुर व दिल्ली के अन्य इलाको के मज़दूरों की यूनियन के रूप में पंजीकृत कराने का फैसला किया है। यह फैसला मज़दूरों ने 27 अगस्त को अपनी आम सभा में ध्वनि मत के जरिये पारित किया व दिल्ली इस्पात मज़दूर यूनियन की स्थापना की।

पिछले 6 जून से वज़ीरपर औद्योगिक क्षेत्र में गरम रोला मज़दूर एकता समिति के नेतृत्व में चली हड़ताल में सिर्फ गरम रोला के मज़दूर ही नहीं बल्कि ठन्डा रोला, प्रेस, रिक्शा, कटर, पोलिश, तेज़ाब व अन्य फैक्टरियों के मज़दूर भी सक्रिय थे। सही मायने में गरम रोला के मज़दूरों की हड़ताल को वज़ीरपुर के स्टील लाईन के मज़दूरों ने मिलकर लड़ा था। यह हड़ताल पूर्ण रूप में नहीं जीती जा सकी इसका कारण भी इस एकता का स्वत:स्फूर्त खड़ा होना था ना कि सचेतन प्रयास द्वारा खड़ा किया जाना था। 8 घंटे के काम की माँग को असल में सिर्फ़ गरम रोला की फैक्टरियों में लागू करवा पाना लगभग नामुमकिन था परन्तु गरम रोला के जुझारू मज़दूरो ने कई फैक्टरियों में 8 घंटे के काम को 3 महीने तक लागू भी करवाया। यह लड़ाई तो महज़ एक शुरुआत थी जिसने मज़दूरों को लड़ने की एक दिशा दी है। दिल्ली इस्पात मज़दूर यूनियन गरम रोला, ठंडा रोला, प्रेस लाईन, तेज़ाब और स्टील लाईन के सभी मज़दूरों के बीच बनी एकता का ठोस रूप है।

27 अगस्त को हुई आम सभा ने पहले तो ध्वनि मत से यूनियन को जल्द से जल्द पंजीकृत करवाने की सहमति ली। वैसे तो यह बात अपने में ही बड़ी अचरज भरी है कि यूनियन को जल्द से जल्द पंजीकृत करवाने के लिए भी आम सहमति लेनी पड़ी परन्तु यह ज़रूरी था क्योंकि गरम रोला मज़दूर एकता समिति में सदस्य रहे रघुराज ने अन्दरखाने में प्रचार किया था कि यूनियन को अभी पंजीकृत नहीं करना चाहिए। यही दिखाता है कि रघुराज गरम रोला मज़दूर एकता समिति के भीतर मालिकों का दलाल था। वह मालिकों को सिर्फ़ उस हद तक झुकाना चाहता था जिससे कि उसका भी धंधा चलता रहे और मालिक भी परेशान न हों और मज़दूर को थोड़ी बहुत रियायतें मिल जायें। दूसरा तथ्य जिसने यह उजागर किया व रघुराज के असली चरित्र को नंगा किया वह था उसके द्वारा यूनियन का हिसाब न प्रस्तुत करना। लम्बे समय से कमेटी के अन्य सदस्य (सनी, बाबूराम, फिरोज़, अम्बिका, शिवानी व अन्य) जोर देकर कह रहे थे कि यूनियन का हिसाब आम सभा में रखा जाये व हर मज़दूर को यूनियन का हिसाब देखने का अधिकार होना चाहिए मगर रघुराज लम्बे समय से न नुकर कर रहा था। धीरे-धीरे यह न नुकुर "साफ़ नहीं" में बदल गयी थी। इसपर बाबूराम, सनी, अम्बिका, शिवानी व कमेटी के अन्य सदस्यों ने आम सभा बुलाकर फैसला लेने को कहा तो रघुराज ने इंकार कर दिया। परन्तु कमेटी के अन्य सदस्यों ने आम सभा बुलाने का आह्वान किया और जमकर इसका प्रचार भी किया जिससे कि मज़दूरों की आम सभा में यूनियन पंजीकरण व हिसाब सम्बन्धी बात हो सके। हड़ताल के दौरान समिति के सदस्य रघुराज ने ट्रेड यूनियन को पंजीकृत करवाने, यूनियन का हिसाब खुला करने व कमेटी बैठकों द्वारा व आम सभा द्वारा यूनियन के फैसले लिए जाने का पहले दबे व बाद में खुलकर विरोध किया। यूनियन के हिसाब को खुला करने व सहयोग को रघुराज के ट्यूशन छात्र के निजी खाते में जमा करने के प्रश्न पर कमेटी में पहले भी बात हो चुकी थी जिसपर रघुराज टालने वाला रवैया अपनाता रहा। दरअसल किसी भी ट्रेड यूनियन सरीखे व्यापक जन संगठन में रघुराज जैसे गद्दारों के घुसने का हमेशा ही खतरा होता है। परन्तु ट्रेड यूनियन जनवाद जहां लागू होता है वहां ऐसे तत्वों का दम घुटने लगता है। जब तक हड़ताल चल रही थी रघुराज ने हड़ताल में प्रत्यक्ष रूप में हड़ताल को तोड़ने की भूमिका नहीं निभायी जिस कारण वह यूनियन में सक्रिय रहा। परन्तु यूनियन पंजीकरण के मुद्दे पर रघुराज ने खुल कर विरोध किया और उसका मज़दूर विरोधी चरित्र नंगा हो गया जिसपर मज़दूरों ने उसे धक्के मारकर अपनी यूनियन से बाहर फेंक दिया। दरअसल किसी भी ट्रेड यूनियन में जनवाद के जरिये ऐसे तमाम तत्वों की छँटाई हो जाती है और मज़दूर विरोधी तत्वों और मालिको के एजेंटों को देर सबेर सही मायने में जनवाद लागू कर रही क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियन बाहर का रास्ता दिखाती है।

तीसरा तथ्य जो रघुराज के असली चरित्र को उजागर करता है वह यह है कि मज़दूरों द्वारा खदेड़े जाने के बाद रघुराज जब पुलिस थाने में मज़दूरों के ख़िलाफ़ पुलिस केस दर्ज कराने पहुंचा तो कमेटी सदस्यों ने भी तुरंत रघुराज के ख़िलाफ़ एक पुलिस शिकायत दर्ज की। शिकायत पर जब पुलिस ने कार्रवाई की तब रघुराज ने सभी पुलिस वालों के हाथ जोड़े और जब वे उसे हवालात में बन्द करने लगे तो वज़ीरपुर का भाजपा नेता सुरेश भारद्वाज, जो फैक्टरी मालिक भी है और कई फैक्टरी मालिक (बंसल, लीलु) रघुराज को रिहा करवाने पहुँचे। अब यह सुविदित है कि मालिक के आदमी के लिए ही मालिक पुलिस थाने पहुँचते हैं। यही वे तथ्य हैं जो साबित करते हैं की रघुराज मालिको का एजेंट है। कमेटी बैठकों में जब तमाम मुद्दों पर सवाल उठे तो रघुराज ने कमेटी बैठक में आने से मना कर दिया और मज़दूरों को आम सभा में आने से मना करने लगा। परन्तु रघुराज की इच्छाओं के विरुद्ध 27 अगस्त को मज़दूरों की भारी संख्या का जुटान हुआ। जुटान की ख़बर मिलते ही रघुराज अपने चेले-चपाटों के साथ सभा को भंग करने राजा पार्क पहुँच गया जिसपर मज़दूरो ने रघुराज और उसके साथ उसके भाई व अन्य लग्गू-भग्गुओं की जमकर पिटाई की व नारेबाज़ी करके राजा पार्क से खदेड़ दिया और अपनी सभा जारी रखी। सभा के अंत में मज़दूरों ने अपनी 11 सदस्य कार्यकारी समिति का चुनाव किया। यूनियन के पंजीकरण के लिए रोज़ कैम्प लगाकर सदस्यता दी जा रही है और यूनियन पंजीकरण की प्रक्रिया शुरू कर दी गयी है।

इस्पात मज़दूर यूनियन के गठन के लिए वज़ीरपुर में हुई आमसभा तथा यूनियन के लिए नाम लिखाते हुए मज़दूरों के चित्र

– बिगुल संवाददाता

यह हादसा नहीं "हत्या" है!

(पेज 4 से आगे)

और सही दुश्मन को पहचान कर उसकी जड़ पर हमला करना होगा।

स्थानीय अख़बारों में इसे एक हादसा बताया गया है। परन्तु यदि हम इस घटना का तार्किक विश्लेषण करें तो यह बिल्कुल साफ हो जायेगा कि यह हादसा नहीं "हत्या" है। आज भारत के असंगठित क्षेत्र में लगभग 48 करोड़ मज़दूर हैं। इनमें करीब 3 करोड़ निर्माण मज़दूर हैं। देशभर में बड़े-बड़े अपार्टमेंट, होटल, एअरपोर्ट, एक्सप्रेसवे, ऑफिस बिल्डिंग आदि का निर्माण अन्धाधुन्ध जारी है। लेकिन इनमें काम करने वाले मज़दूरों की हालत बेहद बुरी है। तमाम सरकारी घोषणाएँ सिर्फ कागज़ पर रह जाती हैं। बड़ी-बड़ी कांस्ट्रक्शन कम्पनियों से लेकर राजकीय निर्माण निगम जैसी सरकारी संस्थाओं तक हर जगह मज़दूरों के साथ एक ही जैसा सुलूक होता है। आये दिन मज़दूर मरते और घायल होते रहते हैं या फिर जानलेवा बीमारियों का शिकार होते रहते हैं। ऐसी घटनाओं पर न तो हमारी सरकार को कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता है और न ही पूँजीपतियों को।

पर हम मज़दूरों को सोचना होगा कि हम कब तक चुप रहेंगे? हमारी चुप्पी हमारी दुश्मन और उनकी ताक़त है, जो हमारी हड्डियों को निचोड़कर अपनी तिजोरियाँ भर रहे हैं। हमें अपने संगठन बनाकर आज से ही पूँजीवाद के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करनी होगी, क्योंकि साथियो, जब तक पूँजीवाद रहेगा, मेहनतकश बर्बाद रहेगा। अब भी चुप रहने का मतलब है – अपनी बारी का इन्तज़ार!

– सत्येन्द्र

समाज का प्रमुख अंग होते हुए भी आज मज़दूरों को उनके प्राथमिक अधिकार से वंचित रखा जा रहा है और उनकी गाढ़ी कमाई का सारा धन शोषक पूँजीपति हड़प जाते हैं। ...यह भयानक असमानता और ज़बरदस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की ओर लिए जा रहा है। यह स्थिति अधिक दिनों तक क़ायम नहीं रह सकती। स्पष्ट है कि आज का धनिक समाज एक भयानक ज्वालामुखी के मुख पर बैठकर रंगरेलियाँ मना रहा है और शोषकों के मासूम बच्चे तथा करोड़ों शोषित लोग एक भयानक खड्ड की कगार पर चल रहे हैं।

– भगतसिंह (सेशन कोर्ट में बयान)

श्रम क़ानूनों में मोदी सरकार के "सुधारों" पर संसदीय वामपन्थियों की चुप्पी

मज़दूर वर्ग के साथ घृणित ग़द्दारी और मौक़ापरस्ती के अनन्त सिलसिले की नयी मिसाल

मोदी सरकार के शुरुआती दौर में ही "अच्छे दिनों" की असलियत जनता के सामने नंगी होनी शुरू हो गयी है। वर्तमान आर्थिक संकट के दौर में गिरते मुनाफे, पूँजीवादी अति-उत्पादन के संकट, निवेश के गिरते स्तर और परिणामस्वरूप होने वाली तालाबन्दी, बेरोज़गारी और महँगाई के कारण बेकाबू होते सामाजिक हालात के दौर में पूँजीपति वर्ग को एक ऐसी सरकार की ज़रूरत थी जो नवउदारीकरण की नीतियों को डण्डे के जोर पर लागू करे और हर 'स्पीड ब्रेकर' को सपाट कर मुनाफ़े के घोड़े को द्रुत गति से दौड़ने के लिए हर बाधा को दूर करे।

मोदी सरकार के इस डण्डातन्त्र का कोपभाजन समूची जनता में भी जो वर्ग सबसे अधिक बनने वाला है वह है मज़दूर वर्ग। क्योंकि मोदी ने पूंजीपतियों से वायदा किया था कि वह पूरे देश विशेष आर्थिक क्षेत्रा (सेज़) बना देगा यानी मज़दूर वर्ग के लिए एक यातना शिविर। यातना शिविर की तैयारियों को क़ानूनी जामा पहनाने के लिए मोदी सरकार ने श्रम क़ानूनों में व्यापक संशोधन भी शुरू कर दिये हैं। 31 जुलाई से कारख़ाना अधिनियम 1948, ट्रेड यूनियन अधिनियम 1926, औद्योगिक विवाद अधिनियम 1948, ठेका मज़दूरी (नियमन व उन्मूलन) अधिनियम 1971, प्रशिक्षु अधिनियम (एप्रेंटिस एक्ट) 1961 से लेकर तमाम अन्य श्रम-क़ानूनों को कमजोर और ढीला करने की कवायद शुरू हो चुकी है। जहाँ पहले कारख़ाना अधिनियम 10 या ज़्यादा मज़दूरों (जहाँ बिजली का इस्तेमाल होता हो) तथा 20 या ज़्यादा मज़दूरों (जहाँ बिजली का इस्तेमाल नहीं होता है) वाली फ़ैक्टरियों पर लागू होता था, अब क्रमशः 20 और 40 मज़दूरों पर लागू होगा। एक माह में ओवरटाइम की सीमा 50 घण्टे से बढ़ाकर 100 घण्टे करने की भी तैयारी की जा रही है। यूनियन बनाने का अधिकार पहले जहाँ 10 प्रतिशत या 100 मज़दूरों की सहमति पर हासिल था उसे बढाकर 30 प्रतिशत किया जायेगा। ठेका मज़दूरी क़ानून 1971 भी अब 20 या इससे अधिक की जगह 50 या उससे अधिक मज़दूरों वाली फ़ैक्टरी पर लागू होगा। औद्योगिक विवाद अधिनियम में बदलाव करके 300 से कम मज़दूरों वाली फ़ैक्टरी को मालिक कभी भी बन्द कर सकता है। सरकार या कोर्ट से पूछने की भी कोई ज़रूरत नहीं है। साथ ही फ़ैक्टरी से जुड़े किसी विवाद को श्रम अदालत में ले जाने के लिए पहले कोई समय-सीमा नहीं थी, अब इसके लिए भी 3 साल की समय सीमा तय कर दी गयी है। प्रस्तावित संशोधनों में कारख़ानों में महिलाओं की रात की ड्यूटी पर पाबन्दियों को ढीला करना भी शामिल है। अप्रेंटिस एक्ट (प्रशिक्षु क़ानून) में संशोधन कर सरकार ने बडी संख्या में स्थायी मज़दूरों की जगह ट्रेनी मज़दूरों को भरती करने का क़दम उठाया है। वास्तव में, इन ट्रेनी मज़दूरों को वे अधिकार भी नहीं प्राप्त होंगे जो कि ठेका मज़दूरों को हासिल थे! किसी भी विवाद में मालिकों पर किसी भी किस्म की क़ानूनी कार्रवाई का प्रावधान भी हटा दिया गया है।

ग़ौरतलब है कि जब मोदी सरकार द्वारा श्रम क़ानूनों में संशोधन करके फ़ैक्टरियों को मज़दूरों के लिए यातना शिविर और बन्दीगृह में तब्दील करने के प्रावधान किये जा रहे थे तो सभी संसदीय वामपन्थी पार्टियों की ट्रेड यूनियनों जैसे सीटू, एटक, एक्टू से लेकर अन्य चुनावी पार्टियों की ट्रेड यूनियनें जैसे इंटक, बीएमएस, एचएमएस एकदम मौन थीं! काफी लम्बे समय बाद इन ट्रेड यूनियनों ने अपनी चुप्पी तोड़कर जुबानी जमाख़र्च करते हुए शिकायत की कि संशोधनों के प्रावधानों के बारे में उनसे कोई सलाह नहीं ली गयी! यानी कि इन ट्रेड यूनियनों की मुख्य शिकायत यह नहीं थी कि पहले से ढीले श्रम क़ानूनों को और ढीला क्यों बनाया जा रहा है, बल्कि यह थी कि यह काम पहले उनसे राय-मशविरा करके क्यों नहीं किया गया! यह वक्तव्य अपने-आप में सरकार की नीतियों को मौन समर्थन है। यानी इन तमाम ग़द्दार ट्रेड यूनियनों की संशोधनों में पूर्ण सहमति है। मज़दूर आन्दोलन के नाम पर इन चुनावी पार्टियों के ट्रेड यूनियन संघ हर साल फरवरी माह में प्रतीक और रस्म अदायगी के रूप में दो दिन के अवकाश (हड़ताल!) की घोषणा करता है जिसे तमाम सरकारों ने भी राष्ट्रीय अवकाश के रूप में सहयोजित कर लिया है। इसी कड़ी में इन्होंने जन्तर-मन्तर पर सरकार की नीतियों के "ख़िलाफ़" झुनझुना प्रदर्शन करने का आह्वान किया है। विगत कई दशकों से ये संगठित मज़दूरों के अच्छे-ख़ासे हिस्से को बरगलाने तथा फुसलाने में कामयाब रहे हैं। ग़ौरतलब है कि तमाम संसदीय वामपन्थी ट्रेड यूनियनें देश के कुल मज़दूरों के केवल 7 प्रतिशत संगठित हिस्से का ही प्रतिनिधित्व करती हैं और उनकी दुकानदारी यथावत् चलती रहती है। 93 प्रतिशत ठेका व दिहाडी मज़दूरों के सवालों को वे कभी नहीं उठाते या फिर उठाते भी हैं तो ऐसे कि न ही उठाते तो अच्छा था। वैसे अगर देखा जाये तो इन 7 प्रतिशत संगठित क्षेत्र के मज़दूरों के भी एक हिस्से के मुँह में पर्याप्त घूस ठूँसी जा चुकी है और इन 'व्हाइट कॉलर' मज़दूरों का मज़दूर वर्ग से कुछ सरोकार रह नहीं गया है। वास्तव में, मौजूदा केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें मुख्य तौर पर इसी कुलीन मज़दूर वर्ग की नुमाइन्दगी करती हैं, जो कि अपने आपको मज़दूर नहीं बल्कि 'कर्मचारी' कहलाना पसन्द करते हैं। मज़दूरों का नाम लेने वाले इन आस्तीन के सांपों की ग़द्दारियों के अनेकोंनेक संस्करण इतिहास में भी दर्ज हैं जिसका एक प्रातिनिधिक उदाहरण बंगाल में सीपीएम की सरकार द्वारा सिंगूर और नन्दीग्राम में किया गया किसानों का क़त्लेआम व स्त्रियों का बलात्कार है। सभी संसदीय वामपन्थियों की मज़दूर वर्ग के साथ कुत्सित और घृणित ग़द्दारी और मौक़ापरस्ती चरित्रा एकदम निपट नंगा हो गया है। असल में तो ये सारे संसदीय वामपन्थी इस व्यवस्था की सुरक्षा पंक्ति का ही काम करते हैं। कुछ गरमागरम नारों और जुमलों का इस्तेमाल करके मज़दूर वर्ग के एक अच्छे ख़ासे हिस्से की क्रान्तिकारी क्षमताओं को कुन्द करने का काम करते हैं तथा राज्य के साथ मिलकर जनविरोधी नीतियां बनाने में इनके साथ कन्धे से कन्ध मिलाकर शिरकत करते हैं। जिन भी राज्यों में इनकी सरकारें रही हैं, वहाँ उन्होंने भी पूँजीपतियों के साथ मिलकर जनता को बदस्तूर लूटा है। फ़िलहाल, मोदी सरकार द्वारा श्रम क़ानूनों में संशोधन करके मज़दूर वर्ग के हितों पर ख़तरनाक हमले पर इनकी मौन सहमति या फिर दिखावटी मरगिल्ले विरोध ने एक बार फिर से साबित कर दिया है कि जब कि मज़दूर आन्दोलन और विशेष तौर पर ट्रेड यूनियन आन्दोलन सीटू, एटक, इण्टक, एक्टू, एचएमएस व बीएमएस जैसे मज़दूर वर्ग की ग़द्दार ट्रेड यूनियनों से छुटकारा नहीं पाता और अपनी क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियनों का निर्माण करके एक नये ट्रेड यूनियन आन्दोलन की शुरुआत नहीं करता, तो फिर आने वाले समय में उसके प्रतिरोध की सारी सम्भावनाएँ समाप्त हो जायेंगी। एक नया क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियन आन्दोलन जो कि चुनावी पार्टियों से पूरी तरह से स्वतन्त्र हो, आने वाले समय में हमारे अस्तित्व की शर्त है और हमें अभी से इस दिशा में काम शुरू कर देना चाहिए।

– सुनील

नकली ट्रेड यूनियनों से सावधान!

मज़दूरों के जितने बड़े दुश्मन फ़ैक्टरी मालिक, ठेकेदार और पुलिस-प्रशासन होते हैं उतने ही बड़े दुश्मन मज़दूरों का नाम लेकर मज़दूरों के पीठ में छुरा घोंपनेवाले दलाल यूनियन होते हैं। ये दलाल यूनियन भी मज़दूरों के हितों और अधिकारों की बात करते हैं पर अन्दरखाने पूँजीपतियों की सेवा करते हैं। ऐसी यूनियनों में प्रमुख नाम सीटू, एटक, इंटक, बी एम एस, एच एम एस और एक्टू हैं। इनका काम मज़दूर वर्ग के आन्दोलन को गड्ढे में गिराना तथा मज़दूरों और मालिकों से दलाली करके अपनी दुकानदारी चलाना है। जहाँ कहीं भी मज़दूरों की बड़ी आबादी रहती है ये वहाँ अपनी दुकान खोलकर बैठ जाते हैं और अपनी रस्म अदायगियों द्वारा दुकान चलाते रहते हैं। जब किसी मज़दूर के साथ कोई दुर्घटना हो जाये या उसके पैसे मालिक रोक ले या उसे काम से निकाल दिया जाये तो इन यूनियनों का असली चेहरा सामने आ जाता है। सबसे पहले तो 100-200 रुपये अपनी यूनियन की सदस्यता के नाम पर लेते हैं उसके बाद काम हो जाने पर 20-30 प्रतिशत कमीशन मज़दूर से लेते हैं। ज़्यादातर मामलों में मज़दूरों को कुछ हासिल नहीं होता है। कुछ मामलों में थोड़ी-बहुत रकम मालिकों स दिलवा देते हैं ताकि मज़दूरों में थोडा भ्रम कायम रह सके और इनका धन्धा चलता रहे। इसके अलावा बीच-बीच में कभी-कभी सरकार के मज़दूर विरोधी रवैये के ख़िलाफ़ रैली और प्रदर्शन भी कर देते हैं। यह सब फ़रेब है। वास्तविकता तो यह है कि यह सब करने के पीछे इनका मकसद होता है मज़दूरों को भ्रम में फँसाकर रखना और उन्हें कोई भी क्रान्तिकारी क़दम उठाने से रोकते रहना। इनका मकसद होता है मज़दूरों को दुअन्नी-चवन्नी की लड़ाई में उलझाये रखना ताकि चोर दरवाजे से पूँजीपतियों की सेवा होती रहे। एक वाक्य में कहा जाये तो से दलाल यूनियन मज़दूरों के अन्दर मालिकों और व्यवस्था के ख़िलाफ़ उबल रहे गुस्से पर ठण्डे पानी का छींटा मारने का काम करते हैं ताकि मज़दूरों का क्रान्तिकारीकरण रोका जा सके।

अब हम इस देश की प्रमुख दलाल यूनियनों के बारे में जानेंगे। इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस (इण्टक) कांग्रेस पार्टी से जुड़ी यूनियन है और यह भी मज़दूर हितों की बात करती है – यह सबसे बड़ा मज़ाक़ है। इस देश में सबसे ज़्यादा शासन करने वाली पार्टी काँग्रेस है जो यहाँ के बड़े-बड़े पूँजीपतियों की नुमाइन्दगी करती है। इण्टक फिर किस मुँह से कहती है कि वह मज़दूरों के हितों की रक्षा करेगी! इण्टक की यूनियनें ज़्यादातर बीमा, बैंक और ऊँचा वेतन पाने वाले कर्मचारियों के बीच हैं। अगला नाम भारतीय मज़दूर संघ (बी.एम.एस.) का है जो दावा करती है कि सबसे ज़्यादा सदस्य इस यूनियन में हैं। यह यूनियन भाजपा की है। भाजपा का घोर मज़दूर विरोधी और फासिस्ट चरित्र किसी से छुपा नहीं है। मज़दूरों के ख़िलाफ़ सबसे ज़्यादा दमनकारी क़ानून बनाना और मज़दूरों का सबसे बर्बर दमन भाजपा के ही शासनकाल में होता है। अभी हाल में ही नरेन्द्र मोदी की सरकार ने जो पहला प्रमुख काम किया है वह है श्रम क़ानूनों में बदलाव का प्रस्ताव। यानी पूँजीपतियों द्वारा मुनाफ़ा निचोड़ने की प्रक्रिया में आनेवाली सारी बाधाओं को हटा देना और मज़दूरों पर मुनाफ़े की चक्की को थोड़ा और तेज़ घुमा देना। बी.एम.एस. अपनी पार्टी की नीतियों के ख़िलाफ़ नहीं जा सकती है, हाँ दिखावे के लिए कुछ भीख ज़रूर माँग सकती है। बी.एम.एस. जैसी यूनियन पूँजीपतियों की सबसे ज़्यादा वफ़ादार होती है इसलिए ज़्यादातर सरकारी उपक्रमों में बी.एम.एस. की यूनियन है जिसे सरकार द्वारा भी स्वीकृति मिलती है। इसका दूसरा काम होता है जब देश में महँगाई और बेरोज़गारी चरम सीमा पर हो तो ऐसे में मज़दूरों के एक हिस्से को जो वेतनभोगी होता है उसे हमेशा सरकार के पक्ष में बनाये रखा जाये और निचले तबके की बहुसंख्यक मजदूर आबादी के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए खड़ा किया जा सके। यह यूनियन मज़दूरों में वर्ग चेतना नहीं जगाती बल्कि उन्हें धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र आदि के सवाल पर बाँटने का काम करती है। बी.एम.एस. जैसी यूनियनें मज़दूरों के बीच रंगा सियार है। इसे जितनी जल्दी हो मज़दूरों के बीच से निकाल दिया जाना चाहिए।

इसके बाद ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस (एटक) का नाम है। एटक भाकपा (सी.पी.आई.) की मज़दूर यूनियन है। 1947 के पहले सी.पी.आई. मज़दूर राज की बात करती थी लेकिन 1952 से यह पार्टी चुनावी राजनीति में आयी और जल्दी ही काँग्रेस पार्टी की 'टीम बी' बन गयी। 1958 में सी.पी.आई. ने अपने संविधान से 'क्रान्तिकारी हिंसा' शब्द भी हटा दिया और खुले तौर पर संशोधनवादी बन गयी। इसी तरह एटक भी अपनी पार्टी की राह पर चलते हुए मज़दूरों को सिर्फ़ क़ानूनी दायरे में बाँधकर मालिकों से कुछ टुकड़े माँगने का काम करती रहती है। अभी हाल ही में श्रीराम पिस्टन (भिवाड़ी) के मज़दूरों का शानदार आन्दोलन लड़ा जा रहा था लेकिन एटक ने इसे सिर्फ़ क़ानूनी दायरे तक सीमित करके और मज़दूरों को शान्तिपूर्वक धरने पर बिठाये रखकर मज़दूरों को थका दिया और पूरे आन्दोलन को गड्ढे में गिरा दिया। श्रीराम पिस्टन के मज़दूर जिन माँगों को लेकर लड़ रहे थे वह पूरे ऑटो सेक्टर के मज़दूरों की माँगें हैं। अगर इसका एक जुझारू और सही समझ वाला नेतृत्व होता तो यह पूरे ऑटो सेक्टर के मज़दूरों का आन्दोलन बन सकता। ऐसा आन्दोलन मालिकों और सरकार को झुका सकता था और अपनी माँगें मनवा सकता था। लेकिन एटक की ग़द्दारी ने पूरे आन्दोलन का सत्यानाश कर दिया। यह एक आन्दोलन नहीं बल्कि देशभर में अनगिनत आन्दोलनों की कहानी है। एटक मज़दूरों का नाम लेकर लाल झण्डे के तले मज़दूर वर्ग से ग़द्दारी कर रही है।

अब कहने को इस देश की सबसे बड़ी यूनियन सेण्टर ऑफ़ इण्डियन ट्रेड यूनियन्स (सीटू) का इतिहास और वर्तमान जान लेते हैं। सीटू माकपा यानी सी.पी.एम. की मज़दूर यूनियन है। सी.पी.एम. का गठन 1964 में हुआ और उसी समय से चुनावी राजनीति में पार्टी ने भागीदारी शुरू कर दी। बंगाल में इनकी सरकार 34 सालों तक कायम रही और वहाँ भी मज़दूरों के हालात देश के अन्य हिस्सों के मज़दूरों से अलग नहीं थे। इनका असली चेहरा तब और खुलकर सामने आया जब बंगाल के सिंगुर और नन्दीग्राम में टाटा की फ़ैक्टरी

(पेज 10 पर जारी)

सावधान! कहीं आप मालिकों की भाषा तो नहीं बोल रहे?

एक पुरानी लेकिन प्रसिद्ध कहावत है – 'डूबते को तिनके का सहारा'। मगर काश कि तिनके डूबते हुए लोगों को सचमुच में बचा पाते। सुरसा के मुँह की तरह फैलती महँगाई, बढ़ती बेरोज़गारी, अमीर-ग़रीब का बढ़ता अंतर, जहरीली होती हवा और पानी तथा शोषण की बढ़ती हुई रफ़्तार के भँवर में फंसे आम मेहनतकश जन दुर्भाग्य से झूठ-मूठ की आशा के तिनकों के सहारे इस संकट से उभरने की बचकाना उम्मीदें पाले बैठे हैं। बात यह नहीं है कि मज़दूर और आम मेहनतकश जन बुद्धिहीन हैं या बातों को सुनते-समझते नहीं हैं। असली समस्या यह है कि वो अपने आस-पास की दुनिया, अर्थव्यवस्था तथा राजनीति में होने वाले हर छोटे-बड़े बदलाव को मालिक वर्ग के नज़रिये से देखने की आदत के गुलाम हैं। इसी लिए मज़दूर वर्ग तथा अन्य मेहनतकश संसदीय नेताओं और चुनावी पार्टियों द्वारा उछाले जाने वाले नारों के वास्तविक मर्म को समझने में असफल रहते हैं और काफ़ी समय बीतने के बाद ही सच्चाई को समझ पाते हैं। तब तक मौका उनके हाथ से निकल चुका होता है।

अभी हाल के महीनों में भाजपा की मोदी सरकार ने श्रम क़ानूनों में कई बड़े बदलाव किए हैं। मीडिया, नेता और पूँजीपतियों सहित सारा धनिक समाज इन क़ानूनी परिवर्तनों के बाद खुशी से गिल्ल है। दावा किया जा रहा है कि अब करोड़ों की संख्या में नये रोज़गार पैदा होंगे, मज़दूरों की आमदनी बढ़ेगी, उत्पादन बढ़ेगा और समाज में खुशहाली आयेगी। अगर पाठकों को याद हो तो 1990-91 में नरसिंह राव की कांग्रेसी सरकार के समय नयी आर्थिक नीतियों को लागू करते वक़्त देश की जनता को यही सबकुछ बताया-सिखाया गया। लेकिन असलियत में हुआ यह कि पिछले 24 सालों में सारा विकास और सम्पन्नता देश के ऊपरी 15-20 करोड़ लोगों तक ही सीमित होकर रह गयी। आबादी के सबसे बड़े हिस्से यानी मज़दूर, ग़रीब किसान, निम्न मध्यवर्ग को इस विकास की जूठन से ही संतोष करना पड़ा है। कांग्रेस की सरकार यह बात समझती थी और उसे इस बात का भी अन्देशा था कि अगर आर्थिक सुधारों के नाम पर ऊपर की मुट्ठीभर आबादी द्वारा मज़दूरों-मेहनतकशों के श्रम को लूटने का काम इसी गति से जारी रहा तो देश में जन-असंतोष भी फैल सकता है। इसी लिए अपने शासन के अन्तिम वर्षों में उसने इस बेलगाम लूट की रफ़्तार को एक हद तक धीमा करने की कोशिश की। पूँजीपति वर्ग की सबसे पुरानी और वफ़ादार पार्टी से भला और क्या उम्मीद की जा सकती थी। कांग्रेस की इन कारगुज़ारियों के दो परिणाम निकले। पहला यह कि धनी समाज और पूँजीपति वर्ग कांग्रेस से नाराज़ हो गया। दूसरा, महँगाई तथा जीवन के लगातार कठिन होते हालातों के कारण आम जनता भी कांग्रेस से रूठ गयी। ठीक इन्हीं हालातों का फायदा उठाते हुए भाजपा ने मोदी के नेतृत्व में "विकास", "सुशासन", "चुस्त" सरकार और "अच्छे दिन आयेंगे" जैसे नारे उछाले। जनता को लगा कि मोदी देश के मेहनतकशों के लिए विकास और अच्छे दिनों का वायदा कर रहे हैं। उन्हें लगा कि सुशासन और चुस्त सरकार बनाने का लक्ष्य आम जनता की सेवा करना है। दिमागी गुलामी की बेड़ियों में जकड़े हुए आम जन भला इससे इतर सोच भी क्या पाते। पूँजीपति वर्ग अच्छी तरह जानता था कि मोदी असल में पूँजी के विकास, पूँजी के लिए सुशासन तथा पूँजी के लिए ही अच्छे दिनों को लौटाने का वायदा कर रहे हैं। थोड़े में कहा जाए तो सारे वायदे पूँजीपतियों से किए गये थे न कि जनता से। मोदी की 100 दिन की सरकार ने साबित कर दिया है कि वो देशी-विदेशी पूँजी की सेवा में दिनों-रात पसीना बहा रहे हैं।

यहाँ यह जानना दिलचस्प होगा कि चुनाव से पहले और फिर भाजपा सरकार के गठन के बाद देश का पूँजीपति वर्ग और उनकी शीर्ष संस्थाएँ मोदी तथा सरकार से क्या-क्या माँग कर रही थीं। इस संबंध में हम अपने-आपको श्रम क़ानून तथा अर्थव्यवस्था के दायरे तक ही सीमित रखेंगे। इसके साथ ही यह भी जानना-समझना ज़रूरी है कि आखिर देश और दुनिया के हालातों में वे कौनसे परिवर्तन हुए हैं जिनके कारण सारा पूँजीपति वर्ग और उसके लग्गू-भग्गू श्रम क़ानूनों में बदलाव की माँगें उठा रहे हैं और हम देख रहे हैं कि वास्तव में ये बदलाव किए भी जा रहे हैं।

आज हमारे देश में 44 केन्द्रीय श्रम क़ानूनों के साथ-साथ 100 से अधिक राज्य स्तरीय श्रम क़ानून अस्तित्व में हैं। इन क़ानूनों के निर्माण की शुरुआत ब्रिटिश काल में ही हो चुकी थी। अगर विश्व के पैमाने पर देखें तो श्रम क़ानूनों का जन्म पूँजीवादी उत्पीड़न के ख़िलाफ़ मज़दूरों के जुझारू संगठित संघर्षों के साथ जुड़ा हुआ है। 1886 का शिकागो मज़दूर आन्दोलन, जिसने मई दिवस को जन्म दिया, इस मायने में मील का पत्थर साबित हुआ। इसके बाद से ही मज़दूर आन्दोलनों के दबाव में पूँजीवादी सरकारों को तेज़ गति से श्रम क़ानूनों का निर्माण करना पड़ा। यहाँ यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि आज हम श्रम क़ानूनों को जिस रूप में देखते समझते हैं उनका निर्माण द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के वर्षों में शुरू हुआ। इससे पहले के क़ानूनों में मज़दूर और मालिक के बीच का संबंध आम तौर पर बेहद लचीला रखा जाता था और उसे क़ानूनी दायरे से बाहर माना जाता था। सीधी-साधी भाषा में कहें तो मालिक मज़दूरों को अपनी ज़रूरत मुताबिक़ काम पर रखते थे और काम ख़त्म होने पर उन्हें उतनी ही आसानी से निकाल दिया करते थे। लेकिन विश्वयुद्ध के बाद पहली बार ऐसे क़ानून बनाये गये जिनमें रोज़गार की सुरक्षा के प्रावधान थे। अब मालिक महीने भर की नोटिस और हरजाना दिये बिना मज़दूरों को काम से न निकाल सकते थे। मज़दूरों को यह अधिकार भी मिला कि वो गलत तरीकों से निकाले जाने पर मालिकों के ख़िलाफ़ श्रम अदालतों में जा सकें और उनपर मुक़दमा कर सकें। ऐसा नहीं था कि मालिकों या सरकारों ने मज़दूरों के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित करते हुए उन क़ानूनों को बनाया हो। असल में इन क़ानूनों को बनाने के पीछे दो कारण सक्रिय थे। पहला राजनीतिक कारण था और दूसरा अधिक बुनियादी आर्थिक कारण था। राजनीतिक कारण यह था कि पूरी दुनिया के पूँजीपति कम्युनिस्ट सत्ताओं यानी मज़दूरों द्वारा शासन, सत्ता और अर्थव्यवस्था की बागडोर अपने हाथों में लिए जाने की घटनाओं से बुरी तरह डरे हुए थे। "लाल आतंक" का डर उन्हें सोने नहीं देता था इसीलिए अपने-अपने देश के मज़दूरों का शोषण जारी रखते हुए भी उनके लिए कुछ रियायतें देना ज़रूरी हो गया था। दूसरा कारण उस समय की पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली से जुड़ा हुआ था। यह वह समय था जब उद्योग की नयीं-नयीं शाखाओं का विकास हो रहा था। नयीं मशीनें काफ़ी आधुनिक होते हुए भी इस तरह से बनी थीं कि उन्हें चलाने का हुनर साधना आसान काम न था। काफ़ी मेहनत और समय ख़र्च करने के बाद ही कुशल कारीगरों की एक पीढ़ी तैयार हो पाती थी। ऐसे में मज़दूरों को काम से निकाल बाहर करना मालिकों के लिए घाटे का सौदा था। इन कारणों से श्रम क़ानूनों में रोज़गार सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा, महँगाई भत्ता, छुट्टियों का प्रावधान, काम के घंटों का सख़्ती से नियंत्रण आदि कई प्रावधान शामिल किए गये। यह अलग बात है कि सहूलियतें हासिल होने के बाद मज़दूरों ने अपने आन्दोलन के जुझारुपन और क्रान्तिकारी चेतना को गँवाकर इन सुधारों की कीमत भी चुकाई।

समय मज़दूरों के लिए ठहरा नहीं रह सकता था। पूँजीवादी उत्पादन लगातार विकसित होता रहा और मुनाफ़े की अन्धी हवस ने उसे नयी-नयी तक्नोलोजी और अत्याधुनिक मशीनों के निर्माण के लिए प्रेरित किया। उधर क्रान्तिकारी चेतना से रिक्त मज़दूर आन्दोलन कमज़ोर होकर बिखरने लगा था। मज़दूर सत्ताएँ भी वर्ग संघर्ष के पहले चक्र की शुरुआती सफलताओं के बावजूद अपनी बढ़त को कायम न रख सकीं। विश्व इतिहास में मज़दूरों द्वारा शासन-सत्ता सँभालने का यह पहला अवसर था। इस विकट वर्ग संघर्ष के दौरान उनसे कई राजनीतिक ग़लतियाँ भी हुईं। समय रहते इन राजनीतिक भूलों को न सुधार पाने के परिणामस्वरूप वे अपने शासन-सत्ता की रक्षा न कर सके। इस तरह पूरी दुनिया के पैमाने पर मज़दूर सत्ताओं को पीछे की ओर क़दम हटाने पड़े। 1970 का दशक आते-आते पूँजीवाद अपने आर्थिक संकटों में बुरी तरह फंस चुका था लेकिन मज़दूर आन्दोलन की ओर से चुनौती भी करीब-करीब ख़त्म हो रही थी। पूँजीवाद के सामने अतिरिक्त उत्पादन यानी मन्दी का भयानक संकट था। इस संकट से उबरने के लिए ज़रूरी था कि पूँजी नये बाज़ारों की तलाश करती यानी वहाँ पूँजी निवेश किया जाता जहाँ अभी भी इसकी गुँजाइश बाकी थी। दूसरे, मज़दूरों के श्रम को ज़्यादा से ज़्यादा निचोड़ने की आज़ादी भी ज़रूरी थी क्योंकि तभी गिरते हुए मुनाफ़े की दरों को बढ़ाया जा सकता था। यह वही समय था जब दुनिया के तमाम पूँजीवादी देश आपसी झगड़ों और खींचातानी के बावजूद पूँजी की आवाजाही को आसान बनाने के लिए पुराने क़ानूनों को बदल रहे थे और नयी व्यवस्था का निर्माण कर रहे थे। इसके तहत विदेश व्यापार, वित्त व्यवस्था, विदेशी पूँजी निवेश तथा श्रम क़ानूनों के पुराने ढाँचों में बदलाव किए जाने लगे। हमारे देश में इन तथाकथित सुधारों की तैयारी 1980 के दशक से ही होने लगी थी। 1990 में इन्हें उदारीकरण-निजीकरण के नाम से देश भर में जारी कर दिया गया। आज मोदी की सरकार जिन श्रम क़ानूनों को बदलकर पूँजीपतियों की वाहवाही लूट रही है असल में उसकी पूरी तैयारी का काम कांग्रेस के शासन काल में ही हो चुका था। मज़दूरों को यह भी समझना होगा कि पिछले कुछ दशकों में पूँजीवादी उत्पादन में ऐसे कई बदलाव हुए हैं जिनके कारण पूँजीपति वर्ग को श्रम क़ानूनों की ज़रूरत यूँ भी नहीं रह गयी है। यही वजह है कि वो इस मसले पर इतना अधिक शोर मचा रहे हैं। आज से 50 साल पहले की अपेक्षा आज एक मज़दूर को तैयार करने की कीमत काफ़ी कम हो चुकी है। उत्पादन का ज़्यादातर काम ऑटोमैटिक या सेमी-ऑटोमैटिक मशीनों से होने लगा है। ऐसे में पूरी उत्पादन प्रक्रिया में मज़दूर की भूमिका में बदलाव आया है। अब उसे बेहद मुस्तैदी के साथ मशीन की तेज़ गति से तालमेल करते हुए मशीन की निगरानी का काम करना होता है या फिर ज़्यादातर समय उत्पादन प्रक्रिया के एक छोटे से हिस्से की देख-रेख करनी होती है। घंटों तक लगातार खड़े रहकर पूरे चौकन्नेपन के साथ काम करने का गुण आज कौशल से भी अधिक उपयोगी बन गया है और उतनी ही आसानी से हासिल भी किया जा सकता है। हालांकि आज भी उद्योग के ऐसे क्षेत्र मौजूद हैं जहाँ हुनरमन्द मज़दूरों की ज़रूरत पड़ती है और वहाँ उनके बिना उत्पादन सम्भव नहीं है। इसी लिए पूँजीपतियों को स्थायी मज़दूर रखने की या तो ज़रूरत ही नहीं रह गयी है या फिर उनकी ज़रूरत पहले के मुकाबले काफ़ी कम हो गयी है।

आज मोदी के नेतृत्व में भारत सरकार पूँजीपति वर्ग और धनिक तबकों की इस ज़रूरत को सबसे अधिक समझ रही है और जी-जान से उनकी ज़रूरतों को पूरा करने में लगी है। इसी लिए सभी सरकारी दफ़्तरों और मन्त्रलयों को विशेष निर्देश जारी किए गये हैं ताकि कोई भी काहिल मंत्री, विभाग, अधिकारी या कर्मचारी नयी आर्थिक नीतियों तथा सुधारों की गति को धीमा न कर सके। चुनाव से पहले ही फिक्की (पूँजीपतियों की सबसे बड़ी संस्था) ने नरेन्द्र मोदी को एक कार्यसूची सौंपी थी उसमें बहुत सी माँगों के साथ यह माँग भी शामिल थी कि नयीं सरकार फ़ैक्टरी क़ानून 1948, औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 तथा ठेका प्रथा क़ानून में तत्काल बदलाव करे। 1 जुलाई 2014 को फिक्की ने कपड़ा मंत्रि को संबोधित एक पत्र में लिखा – "सिलाई उद्योग की मौसमी (सीज़नल) प्रकृति को देखते हुए ओवरटाइम की समय सीमा बढ़ाये जाने की ज़रूरत है।" इसी पत्र में यह भी कहा गया कि – "मज़दूरों को काम पर रखने और निकाले जाने की पूरी आज़ादी होनी चाहिए।" पूँजीपतियों ने ट्रेड यूनियन बनाने की प्रक्रिया को पहले से ज़्यादा कठिन बनाने और मज़दूरों द्वारा मालिकों पर किए जाने वाले मुक़दमों की संख्या पर लगाम लगाये जाने की भी माँग की।

मोदी सरकार इनमें से सभी माँगों को मान चुकी है। इन तथाकथित सुधारों के बाद फिक्की ने देश के उद्योगपतियों का एक सर्वेक्षण करवाया। इसके नतीजों में यह बात सामने आयी कि 93 प्रतिशत उद्योगपतियों को मोदी की नीतियों पर पूरा भरोसा है। यही कारण है कि पूरा कॉरपोरेट मीडिया, अख़बार, धनिक समाज और पूँजीपति वर्ग मोदी की माला जप रहा है। यहाँ यह ध्यान रखने की ज़रूरत है कि मामला भाजपा या कांग्रेस का नहीं है बल्कि आज हर रंग की चुनावी पार्टी आर्थिक नीतियों के मामले पर पूँजीपति वर्ग के साथ एकमत है। ऐसे में अगर मज़दूर और आम मेहनतकश आबादी इन चुनावी मदारियों से किसी भी किस्म की उम्मीदें लगाती है तो इसे कहा जाये? यह बताते चलें कि 2008 की मन्दी से उबरने के लिए जर्मनी ने भी श्रम क़ानूनों में बदलाव किए थे। इसके परिणामस्वरूप वहाँ की मज़दूरियों में गिरावट आयी और जर्मनी के पूँजीपतियों का माल विश्व मण्डी में फिर से होड़ करने लगा। यही हाल स्पेन, इटली, ग्रीस आदि यूरोप के कई मुल्कों में देखा गया।

स्पष्ट है कि देश का पूँजीपति वर्ग राजनीतिक तौर पर बेहद जागरूक और संगठित है। उसे पता है कि अपने वर्ग के आम हितों की रक्षा कैसे की जाती है। अब दारोमदार इस बात पर है कि हमारे देश के मज़दूर भी अपने साझा वर्ग हितों को समझने की शुरुआत कब तक करेंगे। हालांकि इसके समय की भविष्यवाणी करना तो काफ़ी कठिन है लेकिन एक बात तय है कि उनके पास गँवाने के लिए बहुत अधिक वक़्त नहीं है।

– तपीश मैन्दोला

माइकल ब्राउन हत्याकाण्ड : एक शोकगीत जिसका अन्त निश्चित है

दुनिया का महानतम "लोकतन्त्र" होने का दावा करने वाले अमेरिका के मिसौरी राज्य स्थित फ़र्ग्यूसन शहर में बीती 9 अगस्त को एक श्वेत पुलिस अधिकारी ने दिनदहाड़े माइकल ब्राउन नामक 18 वर्षीय निहत्थे अश्वेत किशोर की निर्मम हत्या कर दी। ब्राउन का मृत शरीर कई घंटों तक सड़क पर पड़ा रहा। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के मुताबिक़ ब्राउन के शरीर पर छः गोलियाँ दागी गयी थीं। इस जघन्य अपराध को अंजाम देने वाले पुलिस अधिकारी पर कार्रवाई करने के बजाय फ़र्ग्यूसन की पुलिस ने उसका नाम कई दिनों तक गुप्त रखा। अन्ततः इस हत्याकाण्ड के ख़िलाफ़ बढ़ते विरोध प्रदर्शनों के दबाव में अमेरिकी पुलिस ने 15 अगस्त को दोषी पुलिस अधिकारी का नाम उजागर किया। इसके बाद भी अमेरिकी पुलिस ने दोषी अधिकारी पर कोई कार्रवाई नहीं की। वह पुलिस अधिकारी का बचाव करने के लिए अलग-अलग हथकण्डे अपनाती रही। हद तो तब हो गयी जब अमेरिकी पुलिस ने बेशर्मी की सारी सीमाएँ पार करते हुए माइकल ब्राउन पर ही मनगढ़न्त आरोप लगाने शुरू कर दिए।

इस हत्याकाण्ड से आक्रोशित लोगों ने फ़र्ग्यूसन में 10 अगस्त से ही विरोध प्रदर्शनों का सिलसिला शुरू कर दिया। जल्द ही ये विरोध प्रदर्शन लॉस एंजेल्स, न्यूयार्क, वाशिंगटन डीसी समेत 37 शहरों में फैल गए। पुलिस ने प्रदर्शनकारियों के ख़िलाफ़ गैस के गोलों, रबर बुलेटों, धुँआ बमों, साउण्ड कैननों (जिसके प्रभाव से सुनने की शक्ति हमेशा के लिए जा सकती है) जैसे सैन्य उपकरणों का जमकर इस्तेमाल किया। निस्सन्देह इससे अमेरिकी पुलिस के बढ़ते सैन्यीकरण का स्पष्ट अन्दाजा लगाया जा सकता है। यह बात इस तथ्य से और अधिक पुष्ट होती है कि 1997 में अमेरिकी सरकार ने राष्ट्रीय रक्षा प्राधिकरण अधिनियम के तहत अमेरिकी पुलिस विभाग को सस्ती दरों पर सैन्य उपकरण मुहैया कराए। 9/11 के हमले के बाद तो अमेरिकी पुलिस को सैन्य युद्धास्त्र ख़रीदने के लिए 4.3 अरब रुपयों की मदद दी गयी।

विरोध प्रदर्शनों के जुझारू चरित्र से घबराकर अमेरिकी शासकों ने फ़र्ग्यूसन को एक युद्ध क्षेत्र में तब्दील कर दिया। शहर में जगह-जगह नाकेबन्दियाँ की गयीं। प्रदर्शनकारियों के दिलों में ख़ौफ़ पैदा करने के लिए अमेरिकी पुलिस ने सैन्य वाहनों के ज़रिये गश्त बढ़ा दी। 16 अगस्त को मिसौरी के गवर्नर ने राज्य में आपातकाल घोषित करते हुए कर्फ़्यू का निर्देश दिया। हत्याकाण्ड के दस दिनों के भीतर पुलिस ने 150 प्रदर्शनकारियों के अलावा कई पत्रकारों को भी गिरफ़्तार किया। इस सबके बावजूद प्रदर्शनकारियों ने विरोध जारी रखा। विश्लेषकों के मुताबिक़ 1960 के नागरिक अधिकार आन्दोलन के बाद पहली बार इतने बड़े पैमाने के जुझारू आन्दोलन का उभार देखा गया है। यहाँ ग़ौर करने लायक बात यह है कि राष्ट्रपति ओबामा ने भी इस पूरे घटनाक्रम पर घड़ियाली आँसू बहाने से अधिक कुछ नहीं किया।

बहरहाल, अमेरिकी पुलिस द्वारा अश्वेतों की नृशंस हत्या का न तो यह पहला मामला है न आख़िरी। ब्राउन की हत्या के दस दिनों बाद ही अमेरिकी पुलिस ने मानसिक रूप से कमज़ोर काजिम पॉवल नाम के एक 25 वर्षीय अश्वेत युवक की हत्या कर दी। इसके अलावा अगस्त के महीने में ही अमेरिकी पुलिस ने तीन अश्वेत युवकों को अलग-अलग शहरों में मौत के घाट उतार दिया। एक रिपोर्ट के अनुसार तो 2005-12 के बीच अमेरिकी पुलिस द्वारा हर हफ़्ते औसतन दो अश्वेतों की हत्या की गयी। मारे गए अश्वेतों में से 18 प्रतिशत की उम्र 21 वर्ष से कम थी। ध्यान रखें कि अधूरे होने के कारण ये आँकड़े सही तस्वीर बयान करने में असमर्थ हैं। अमेरिकी सरकार इन आँकड़ों का कोई व्यवस्थित ब्यौरा नहीं रखती। वास्तविक हत्याओं के आँकड़े तो इससे कहीं अधिक हैं।

अमेरिकी पुलिस द्वारा इतने बड़े पैमाने पर अश्वेत आबादी की नृशंस हत्या को अंजाम दिए जाने का एक कारण तो श्वेत आबादी के दिलों में बरसों से अश्वेतों के प्रति पैठी गहरी घृणा भावना है। दूसरा, अमेरिका में अश्वेत आबादी के सामाजिक-आर्थिक हालात ने उनके बीच जिस असुरक्षा की भावना को बढ़ावा दिया है उससे उनके दिलों में असंतोष की चिंगारी सुलग रही है। इस असंतोष की बारीक से बारीक अभिव्यक्ति को अमेरिकी शासकों द्वारा बन्दूक की नोक से शांत किया जाता रहा है। अगर अकेले फ़र्ग्यूसन शहर की बात करें तो 21,000 की आबादी वाले इस शहर में 67 प्रतिशत अश्वेत आबादी रहती है। इनमें बेरोज़गारी की दर 13 प्रतिशत है और यहाँ हर चार में से एक अश्वेत ग़रीब है।

आइये, ज़रा पूरे अमेरिकी समाज में अश्वेत आबादी के सामाजिक-आर्थिक हालात पर एक सरसरी नज़र डालें। अमेरिका में अश्वेत कुल आबादी का 14.2 प्रतिशत हैं। अश्वेत आबादी का 12.6 प्रतिशत हिस्सा बेरोज़गार है जो श्वेत आबादी की तुलना में दुगुना है। वर्ष 2012 में अमेरिका में 28.1 प्रतिशत अश्वेत ग़रीब थे जबकि 2005 में यह आँकड़ा 25.5 प्रतिशत था। अश्वेतों में श्वेतों की तुलना में शिशु मृत्यु दर कई गुना ज़्यादा है। अश्वेत आबादी की रिहाइश के इलाके मुख्य आबादी के इलाकों से अलग-थलग बनाए गए हैं। इन इलाकों में ज़्यादातर ग़रीब अश्वेत रहते हैं जिन्हें बुनियादी सुविधाओं तक से महरूम रखा गया है। याद हो कि 2005 में अमेरिका में आए कैट्रीना तूफ़ान से ज़्यादातर ग़रीब अश्वेत आबादी के रिहाइशी इलाके ही प्रभावित हुए थे। इसका प्रमुख कारण इन इलाकों में मौजूद तटबंधों की ख़स्ता हालत थी। इन्हें वर्षों से यूँ ही छोड़ दिया गया था और मरम्मत तक नहीं करवाई गयी थी। तूफ़ान के दौरान यहाँ रहने वाली ग़रीब आबादी को हर प्रकार की सरकारी मदद से वंचित रखा गया। लोगों के पास इन इलाकों से सुरक्षित निकलने तक के साधन न थे। इस आपदा पर प्रतिक्रिया देते हुए वहाँ के एक "जनप्रतिनिधि" ने कहा था - "हम तो न्यू ऑरलियंस की काली गंदगी को पहले ही साफ़ करना चाहते थे। यह हम न कर सके, ईश्वर ने इसे कर दिया।" यह कथन अमेरिकी संस्कृति की "श्रेष्ठता" तथा "महान" लोकतांत्रिक परम्पराओं का डंका बजाने वालों के मुँह पर क़रारा तमाचा है। अमेरिका में अश्वेत आबादी के बच्चों तक के लिए अलग विद्यालय बनाये गये हैं जो अकसर ही संसाधनों की कमी से जूझते रहते हैं। यहाँ बच्चों को मैटल डिटेक्टर से होकर गुजरना पड़ता है और अकसर ही वहाँ की पुलिस विद्यालय परिसरों में घुसकर इन बच्चों की तलाशी लेती है। अमेरिकी समाज में अश्वेत आबादी के प्रति मौजूद घृणा भावना ने पार्थक्य की गहरी प्रवृतियों को जन्म दिया। इस पार्थक्य को 'जिम क्रो' क़ानूनों के ज़रिये वर्ष 1870-1965 के बीच संस्थागत रूप दिया गया था। इस घृणा भावना का मूल अमेरिकी इतिहास में निहित है जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

इधर अमेरिका में अश्वेतों को बड़े पैमाने पर जेलों में ठूँस दिए जाने की घटनाओं में अप्रत्याशित वृद्धि देखी गयी है। ग़ौरतलब है कि 1970 से 2005 के बीच जेल में बन्द अश्वेतों की संख्या में 700 प्रतिशत का इज़ाफ़ा हुआ है। जेल आबादी में अश्वेतों की बढ़ती संख्या के पीछे मुख्यतः आर्थिक कारण मौजूद हैं। जेल में मौजूद अश्वेत आबादी अमेरिकी पूँजीपतियों को करीब-करीब मुफ़्त श्रम उपलब्ध कराने का एक बड़ा ज़रिया है। इस प्रकार अमेरिकी जेलों से वहाँ के पूँजीपति अकूत मुनाफ़ा तो पीट ही रहे हैं, साथ ही उन पर श्रम क़ानूनों को लागू कराने का कोई दबाव नहीं रह जाता है। वे हड़तालों की चिन्ता से पूरी तरह मुक्त होते हैं और उन्हें सामाजिक सुरक्षा मुहैया कराने के झंझट से भी मुक्ति मिल जाती है। पाठकों की जानकारी के लिए बता दें कि जेल अर्थव्यवस्था की यह परिघटना अब हमारे देश में भी शुरू हो चुकी है। बहरहाल, अमेरिकी जेलों का आलम यह है कि अगर कोई अश्वेत कैदी काम करने से मना करता है तो उसे क़ैद-ए-तनहाई में डाल दिया जाता है। अमेरिकी अदालतें भी इस मामले में पूँजीपतियों के साथ खड़ी हैं, उनके भीतर भी नस्ली नफ़रत की भावना गहराई में पैठी हुई है। छोटे-छोटे अहिंसक अपराधों के लिए भी वहाँ की अदालतें अश्वेत आबादी को लम्बी-लम्बी सज़ाएँ देती हैं जिनकी अवधि अमूमन 10-20 साल तक हो सकती है। इसका मक़सद पूँजीपतियों को अबाध गति से सस्ता श्रम मुहैया कराना है। यह अनायास नहीं है कि अमेरिका में निजी जेलों की संख्या तेजी से बढ़ी है। आज से 10 साल पहले इनकी संख्या केवल 5 थी और अब यह 100 तक पहुँच गयी है।

अमेरिकी समाज में अश्वेत आबादी के प्रति मौजूद घृणाभाव और उनकी दोयम दर्जे की नागरिकता के मूल वहाँ के इतिहास में छिपे हैं। आइए, इस इतिहास की संक्षिप्त पड़ताल करें। कम ही लोग जानते हैं कि आज के अमेरिकी समाज की समृद्धि और चमक-दमक की नींव में अमेरिकी महाद्वीप की मूल आबादी की लाशों और अफ़्रीकी गुलामों (अश्वेत आबादी) की हड्डियों को कूट-कूटकर भरा गया है। सन् 1600 के बाद अमेरिकी महाद्वीप के यूरोपीय शक्तियों द्वारा औपनिवेशीकरण की प्रक्रिया शुरू हो गयी थी। अकेले ब्रिटेन ने यहाँ 13 उपनिवेश स्थापित किए। उस समय इसे न्यू इंग्लैंड के नाम से पुकारा जाता था। विश्व मण्डी की तलाश ही वह प्रेरक शक्ति थी जिसने यूरोपीय मुल्कों को अमेरिका सहित पूरी दुनिया में उपनिवेशों की स्थापना के लिए विवश किया। उस समय पूरा यूरोप गुलामों के व्यापार से अकूत मुनाफ़ा कमा रहा था। लन्दन और लिवरपूल से चलने वाले यूरोपीय मालों से लदे जहाज़ अफ़्रीका के तटीय इलाकों तक माल पहुँचाते और वहाँ अपने खाली जहाज़ों को गुलामों से भरकर अमेरिका के बग़ान मालिकों को ऊँचे दामों पर बेच देते थे। बीहड़ समुद्री यात्राओं के दौरान गुलाम बड़ी संख्या में रास्ते में ही काल के मुँह में समा जाते थे। एक आकलन के अनुसार इन यात्राओं में 20 लाख से अधिक गुलाम रास्ते में ही ख़त्म हो गए। 16वीं से 19वीं शताब्दी के बीच 1-1.5 करोड़ अफ़्रीकी गुलामों को अमेरिका के दक्षिणी हिस्से के बग़ान मालिकों के हाथों बेचा गया। इन गुलामों की बदौलत यूरोपीय व्यापारियों और दक्षिण के बग़ान मालिकों ने अकूत मुनाफ़े कमाए। ये यूरोपीय व्यापारी बाग़ान मालिकों से कपास ख़रीदकर इंग्लैंड की सूती मिलों को बेच दिया करते थे। सभी मुख्य यूरोपीय शक्तियाँ गुलाम व्यापार में संलिप्त थीं।

इस घिनौने व्यापार को जायज़ ठहराने के लिए यूरोप के पूँजीपतियों और अमेरिका के बाग़ान मालिकों ने ईसाई धर्म का जमकर इस्तेमाल किया। इसके लिए उन्होंने बाइबल की कसमें खाईं। उन्होंने अफ़्रीकी गुलामों को निकृष्ट कोटि का प्राणी घोषित किया और इसके समर्थन में नस्लवाद की झूठी अवधारणा का बड़े पैमाने पर प्रचार किया। इस प्रचार ने यूरोप से बड़ी भारी संख्या में अमेरिका आकर बसने वाले सभी प्रवासियों को भी प्रभावित किया। इनका एक बड़ा हिस्सा मेहनतकश वर्ग से आता था। 1850 का दशक आते-आते अमेरिका के उत्तरी हिस्सों में पूँजीवाद मज़बूती से जड़ जमा चुका था जबकि दक्षिणी हिस्से वाले बग़ान मालिक अभी भी गुलाम व्यवस्था को कायम रखे हुए थे। सभी महत्वपूर्ण आर्थिक मसलों पर इनके आपसी हितों की टकराहट होने लगी थी। समय संकेत कर रहा था कि एक ही मुल्क के भीतर दो विपरीत उत्पादन प्रणालियों का अस्तित्व लंबे समय तक क़ायम नहीं रहने वाला था। जल्द ही वह समय आया जब सन् 1861 में अमेरिकी गृहयुद्ध की शुरुआत हुई। इस गृहयुद्ध ने अमेरिका के उत्तरी हिस्सों की श्रेष्ठता को साबित किया और अमेरिकी पूँजीवाद के अग्रगामी विकास की राह का रोड़ा बनी गुलाम व्यवस्था को इतिहास की कचरापेटी में डाल दिया। उस समय अफ़्रीकी गुलामों ने अमेरिका के उत्तरी हिस्सों की ओर से बहुत बड़ी संख्या में गृहयुद्ध में हिस्सा लिया था। उनसे वायदा किया गया था कि गुलामी से मुक्ति के बाद उन्हें जमीन के साथ ही राजनीतिक अधिकार भी हासिल होंगे। हालांकि युद्ध समाप्ति के बाद यह वायदे भुला दिये गये और इससे उपजे अश्वेत असंतोष को सेना द्वारा कुचल दिया गया। यही नहीं 'कू क्लक्स कलैन' नामक संगठित आतंकी गिरोह ने बड़े पैमाने पर अश्वेत आबादी की हत्याएँ कीं। कुल मिलाकर कहा जाए तो गुलामी की प्रथा का कागज़ी तौर पर तो ख़ात्मा हो गया था लेकिन अमेरिकी जनजीवन में गुलामी मौजूद रही। गुलामी की कथित समाप्ति के बाद भी आलम यह था कि अश्वेतों को मामूली आरोपों में गिरफ़्तार कर दक्षिण के श्रम शिविरों में बेच दिया जाता था। उनके श्रम से ही अमेरिका के दक्षिणी भाग में पूँजीवाद परवान चढ़ा। इन श्रम शिविरों के हालातों की तुलना केवल और केवल नाज़ी बन्दी शिविरों से ही की जा सकती है।

इस तरह बरसों-बरस अमानवीय हालातों में जीने को मजबूर अश्वेत आबादी के भीतर असंतोष धीमे-धीमे सुलगता रहा। इसकी सबसे मुखर अभिव्यक्ति 1954-68 के दौरान नागरिक अधिकार आन्दोलन के रूप में फूट पड़ी। इस आन्दोलन के तहत अश्वेत आबादी वोट देने के अधिकार, समान शिक्षा के अवसर, सामाजिक पार्थक्य की समाप्ति आदि मुद्दों को लेकर बेहद जुझारूपन के साथ अमेरिका की सड़कों पर उतर पड़ी। इस आन्दोलन की पूरी अवधि के दौरान अमेरिकी शासक वर्ग ने अनेकों बार अश्वेत आबादी पर कायराना हमले करवाए। करीब 25 नागरिक अधिकार कार्यकर्ताओं की हत्या करवाई गयी। इस सबके बावजूद आन्दोलनकारी एक इंच भी नहीं डिगे। आन्दोलन की प्रचण्ड तीव्रता और अन्तरराष्ट्रीय हालातों के मद्देनज़र यह मुमकिन न था कि अमेरिकी शासक इस आन्दोलन को फ़ौज की संगीनों से कुचल पाता। यह वही दौर था जब तीसरी दुनिया के मुल्कों में राष्ट्रीय मुक्ति युद्ध उभार पर थे, चीन में समाजवाद का झण्डा बुलन्दी से लहरा रहा था। अमेरिकी साम्राज्यवाद के अंतर्विरोध सोवियत संघ (जिसका खोल तो उस समय समाजवादी ही था परन्तु अंतर्वस्तु साम्राज्यवादी थी), फ़्रांस, ब्रिटेन जैसे अन्य साम्राज्यवादी ताकतों के साथ बढ़ रहे थे। इन्हीं राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय हालातों के दबाव में अमेरिकी शासक वर्ग अश्वेत आबादी को कुछ रियायतें देने पर मजबूर हुआ। इसके चलते अश्वेत आबादी के एक छोटे से हिस्से को विश्वविद्यालयों, व्यवसायिक पाठ्यक्रमों में दाखिले के अवसर मिले। सामाजिक कल्याण की योजनाओं जैसे - सामुदायिक चिकित्सालय, प्रारंभिक शैक्षिक कार्यक्रमों आदि का विस्तार भी

(पेज 9 पर जारी)

शहीद-ए-आज़म भगतसिंह के 108वें जन्मदिवस (28 सितम्बर) के अवसर पर

दुनिया में दो तरह के लोग होते हैं। एक वे जो अपना जांगर खटाकर दुनिया का सब कुछ पैदा करते हैं। इन्हीं के ख़ून-पसीने की चमक कायनात की हर शै में झलकती है। इस मेहनतकश वर्ग के पास उत्पादन का कोई साधन नहीं होता और केवल अपनी श्रमशक्ति बेचकर ही यह ज़िन्दा रहता है। हर तरह की नियामतें पैदा करने के बाद भी इन्हें नसीब होती है; भूख, ग़रीबी, कुपोषण और बदहाली। लुब्बे-लुआब यह है कि इस मेहनतकश वर्ग की मेहनत को लूटा जाता है इसीलिए यह वर्ग शोषित वर्ग कहलाता है। दूसरी तरह के लोग वे होते हैं जो प्रत्यक्षत: किसी भी उत्पादक कार्यवाही में भागीदारी नहीं करते, कोई मेहनत नहीं करते और दूसरों की मेहनत पर ऐश करते हैं। समाज के इस छोटे हिस्से के पास उत्पादन के तमाम साधन होते हैं। इन संसाधनों के बूते ही यह वर्ग मेहनतकशों की श्रमशक्ति खरीदता है और बदले में उन्हें केवल इतना देता है कि वे किसी तरह से अपना बस पेट भरकर अगले दिन काम पर आ सकें और अपने जैसे उजरती गुलामों की जमात को भी बढ़ा सकें। दूसरों की श्रम शक्ति यानी मेहनत को लूटकर ही यह वर्ग अपनी अय्यासियों की मीनारें खड़ी करता है। यह वर्ग शोषक वर्ग कहलाता है। उत्पादन के सभी साधनों पर इस वर्ग के मालिकानें के कारण ही इसे मालिक वर्ग भी कहते हैं। अपने मालिकाने हक और मुनाफ़े पर टिकी व्यवस्था को कायम रखने के लिए राज्यसत्ता का पूरा ढाँचा जिसमें कार्यपालिका, न्यायपालिका, विधायिका और तमाम तरह के निकाय शामिल होते हैं भी इसी वर्ग कि सेवा करता है यानी अपनी राज्यसत्ता के द्वारा ही यह मेहनतकशों के वर्ग पर शासन करता है इसीलिए इस वर्ग को शासक वर्ग भी कहते हैं।

दुनिया में हर हमेशा मेहनतकशों के बीच से या समाज से ऐसे लोग भी होते रहे हैं जो मुनाफ़े पर टिकी व्यवस्था के ख़िलाफ़ आवाज उठाते हैं, मेहनतकश जनता को एकजुट-संगठित करने की बात करते हैं, श्रम की लूट के खात्मे की बात करते हैं, व्यवस्था के आमूल-चूल परिवर्तन की बात करते हैं; कुल मिलाकर क्रान्ति की बात करते हैं। चूंकी समाज बदलाव की अपनी गति होती है तो कई बार मेहनतकशों के लिए अपनी आवाज़ को बुलन्द करने वालों, उनकी आकांक्षाओं के साथ अपनी आकांक्षाओं को साझा करने वालों की शहादतों के बावजूद शोषण-उत्पीड़न पर टिकी मालिकों कि वयवस्था कायम रहती है। विभिन्न उतार-चढ़ावों के बीच मेहनतकाश जनता अपने क्रान्तिकारी शहीदों से प्रेरणा ग्रहण करती है, अपने रोज़-रोज़ के संघर्ज़ों से लड़ने के नये तरीके ईजाद करती है, अपने बीच से पुन: नेतृत्वकारी लोगों को पैदा करती है और शोषणकारी व्यवस्था के ख़िलाफ़ बार-बार लामबद्ध होती है। किन्तु शासक वर्ग हमेशा इस जुगत में रहता है कि जनता अपने क्रान्तिकारियों के विचारों को जानने न पाये। इसलिए वह अपनी सेवा में खड़े भाड़े के भोंपुओं, शिक्षा व्यवस्था से लेकर, प्रिण्ट मीडिया (अखबार, पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तकें आदि) और इलैक्ट्रोनिक मीडिया (टी.वी., इण्टरनेट, सिनेमा आदि) आदि के माध्यम से विचारों की धुंध फैलाता रहता है ताकि मेहनतकश लोग अपनी क्रान्तिकारी विरासत से अनभिज्ञ रहे। शासक वर्ग इस प्रयास में रहता है कि जननायकों को या तो बुत बनाकर पूजने की वस्तु बना दिया जाये ताकि लोग फूलमाला चढ़ाकर ही इतिश्री कर लें या फिर शहीदों के क्रान्तिकारी विचारों के बारे में षड़यन्त्रकारी चुप्पी साध ली जाये जिससे कि लोग अपने उर्जस्वी इतिहास को भूल जायें।

भगतसिंह और उनके साथियों कि विचारधारा और राजनीति के प्रति आज भी समाज के बड़े हिस्से की अनभिज्ञता उपरलिखित बात को ही दर्शाती है। 125 करोड़ की आबादी वाले इस देश में कितने ऐसे लोग हैं जो भगतसिंह की क्रान्तिकारी राजनीति से परिचित हैं? क्या कारण है कि भगतसिंह की जेल डायरी तक उनकी शहादत के 63 साल बाद सामने आ सकी वह भी सरकारों के द्वारा नहीं बल्कि कुछ लोगों के प्रयासों के से? क्या कारण है कि आज तक किसी भी सरकार ने भगतसिंह और उनके साथियों की क्रान्तिकारी राजनीतिक विचारधारा को एक जगह सम्पूर्ण रचनावली के रूप में छापने का प्रयास तक नहीं किया? इन सभी कारणों का जवाब एक ही है कि भगतसिंह के विचार आज के शासक वर्ग के लिए भी उतने ही खतरनाक हैं जितने वे अंग्रेजों के लिए थे। कुल 23 साल की उम्र के दहकते हुए उल्कापिण्ड जैसे उनके सम्पूर्ण क्रान्तिकारी जीवन को लोगों के सामने लाना तो दूर की बात है उल्टे कई सरकारी पाठ्यक्रमों तक में भगतसिंह को आतंकवादी के तौर पर भी दर्शाया गया। संघियों ने अपने मुखपत्रें में अलग ही तान छेड़ते हुए क्रान्तिकारी अन्तर्वस्तु के तमाम लेखों के भगतसिंह और उनके साथियों के होने तक को नकार दिया। जैसे कि जानते ही न हों कि इतिहास इनके हाथ की कठपुतली नहीं है बल्कि ऐतिहासिक सच्चाई अन्ततोगत्वा लोगों तक पहुँच ही जाती है। पूरा जोर लगाने पर भी शासक वर्ग देश की जनता के हृदय से भगतसिंह और उनके साथियों के प्रेम को निकालने में नाकाम रहा है। अपनी इसी नाकामी को छुपाने के लिए तमाम चुनावी धन्धेबाज भगतसिंह के नाम को अपनी वोट बैंक की राजनीति के लिए भुनाते भी दिख जायेंगे किन्तु ये धन्धेबाज इनके विचारों के आस-पास भी नहीं फटकेंगे। मौजूदा वक़्त में जब मेहनत की लूट नंगे रूप में जारी हो, जब मेहनतकशों के हक़-हुकूक को फासिस्टी बूट से कुचला जा रहा हो, जब साम्प्रदायिक दंगे प्रायोजित कराकर मेहनतकश जनता की वर्गीय एकजुटता को तोड़ने के प्रयास खुले आम हो रहे हों तो मेहनतकश जनता के लिए अपने इस महान क्रान्तिकारी के विचारों को जानना पहले से कहीं अधिक ज़रूरी हो गया है। ज़ाहिरा तौर पर हम क्रान्तिकारी विरासत को भी हूबहू नहीं अपना सकते बल्कि बदले हुए हालात के अनुसार क्रान्तिकारी सार को सुरक्षित रखते हुए संघर्ष के तरीकों में बदलाव करने पड़ सकते हैं और स्वयं भगतसिंह के अनुसार ही हर चीज हर विचार को आलोचनात्मक विवेक के द्वारा निरख-परख कर ही अपनाना चाहिए। देश की मेहनतकश जनता के लिए भगतसिंह के विचार केवल क्रान्तिकारी धरोहर ही नहीं हैं बल्कि उर्जा का अजस्र स्रोत भी हैं।

भगतसिंह असल में एक व्यक्ति का नहीं बल्कि एच.आर.ए., एच.एस.आर.ए. के क्रान्तिकारियों राजगुरु, सुखदेव, भगवतीचरण वोहरा, चन्द्रशेखर आज़ाद, रामप्रसाद बिस्मिल, अशफ़ाक उल्ला खाँ आदि की पूरी धारा के एक प्रतिनिधि और प्रतीक हैं। आज के समय में भगतसिंह और उनकी क्रान्तिकारी धारा के विचारों को जानना न केवल प्रेरणादायी होगा बल्कि यह हमारे लिए बेहद ज़रूरी भी है। प्रस्तुत हैं भगतसिंह और उनके साथियों के लेखों- बयानों से चन्द उद्धरण :-

''धार्मिक अन्धविश्वास और कट्टरपन हमारी प्रगति में बहुत बड़े बाधक हैं। वे हमारे रास्ते के रोड़े साबित हुए हैं और हमें उनसे हर हालत में छुटकारा पा लेना चाहिए। जो चीज आज़ाद विचारों को बर्दाश्त नहीं कर सकती उसे समाप्त हो जाना चाहिए।" – 'नौजवान भारत सभा, लाहौर का घोषणापत्र' से

''यह भयानक असमानता और जबरदस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की और लिये जा रहा है। यह स्थिति अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकती। स्पष्ट है आज का धनिक समाज एक भयानक ज्वालामुखी के मुख पर बैठकर रंगरेलियां मना रहा है।" – 'बम कांड पर सेशन कोर्ट में बयान' से

''क्रान्ति मानव जाति का जन्मजात अधिकार है जिसका अपहरण नहीं किया जा सकता। स्वतन्त्रता प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। श्रमिक वर्ग ही समाज का वास्तविक पोषक है, जनता कि सर्वोपरि सत्ता की स्थापना श्रमिक वर्ग का अन्तिम लक्ष्य है। इन आदर्शों के लिए और इस विश्वास के लिए हमें जो भी दण्ड दिया जायेगा, हम उसका सहर्ष स्वागत करेंगे। क्रान्ति इस पूजा-वेदी पर हम अपना जीवन नैवेध के रूप में लाये हैं, क्योंकि ऐसे महान आदर्श के लिए बड़े से बड़ा त्याग भी कम है।" – 'बम कांड पर सेशन कोर्ट में बयान' से

''नौजवानों को क्रान्ति का यह सन्देश देश के कोने-कोने में पहुँचाना है, फैक्टरी-कारख़ानों के क्षेत्रों में, गन्दी बस्तियों और गाँवों की जर्जर झोंपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों में इस क्रान्ति की अलख जगानी है जिससे आज़ादी आयेगी और तब एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण असम्भव हो जायेगा।" – 'विद्यार्थियों के नाम पत्र' से

''भारतीय पूँजीपति भारतीय लोगों को धोखा देकर विदेशी पूँजीपति से विश्वासघात की कीमत के रूप में कुछ हिस्सा प्राप्त करना चाहता है। इसी कारण मेहनतकश की तमाम आशाएँ समाजवाद पर टिकी हैं और सिर्फ़ यही पूर्ण स्वराज्य और सब भेदभाव ख़त्म करने में सहायक हो सकता है।" – 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन का घोषणापत्र' से

''क्रान्ति से हमारा क्या आशय है, यह स्पष्ट है। इस शताब्दी में इसका केवल एक ही अर्थ हो सकता है ख्र जनता के लिए जनता का राजनीतिक शक्ति हासिल करना। वास्तव में यही है 'क्रान्ति', बाकि सभी विद्रोह तो सिर्फ़ मालिकों के परिवर्तन द्वारा पूँजीवादी सड़ान्ध को ही आगे बढ़ाते हैं....भारत में हम भारतीय श्रमिकों के शासन से कम कुछ नहीं चाहते। भारतीय श्रमिकों को आगे आना है। हम गोरी बुराई की जगह काली बुराई को लाकर कष्ट नहीं उठाना चाहते। बुराइयाँ, एक स्वार्थी समूह की तरह, एक-दूसरे का स्थान लेने के लिए तैयार हैं।" – 'क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा' से

''युद्ध छिड़ा हुआ है और यह लड़ाई तब तक चलती रहेगी जब तक कि शक्तिशाली व्यक्तियों ने भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार कर रखा है ख्र चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज पूँजीपति और अंग्रेज या सर्वथा भारतीय ही हों, उन्होंने आपस में मिलकर एक लूट जारी कर रखी है। चाहे शुद्ध भारतीय पूँजीपतियों के द्वारा ही निर्धनों का ख़ून चूसा जा रहा हो तो भी इस स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता।" – 'फांसी से तीन दिन पूर्व पंजाब के गवर्नर के नाम पत्र' से

''लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग चेतना की ज़रूरत होती है। ग़रीब मेहनतकशों व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए संसार के सभी ग़रीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताकत अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुक़सान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी जंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी।" – 'साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज' से

– अरविन्द

माइकल ब्राउन हत्याकाण्ड

(पेज 8 से आगे)

अश्वेत आबादी के अत्यंत सीमित हिस्सों तक ही किया गया। कुल मिलाकर देखा जाए तो इन रियायतों से अश्वेत आबादी के जिस छोटे से हिस्से को लाभ पहुँचा, सिर्फ़ उन्हीं में से कुछ लोग सामाजिक पायदान की ऊपरी सीढ़ियों तक पहुँच पाए जबकि बहुसंख्यक आबादी के हालात वैसे ही बने रहे। सामाज में अश्वेत आबादी के पार्थक्यीकरण की परिघटना आज भी हूबहू मौजूद है।

अमेरिका में अश्वेत आबादी के दमन-उत्पीड़न का सिलसिला अमेरिकी पूँजीवाद के उद्भव और विकास के साथ गहराई से जुड़ा है। इस आबादी के श्रम की बर्बर लूट ही अमेरिकी "सभ्य" समाज का मूलाधार है। इनके वास्तविक आज़ाद जीवन की शुरुआत तो अमेरिकी पूँजीवाद की मौत के बाद ही मुमकिन है।

– श्वेता

आख़िर क्या हो रहा है पाकिस्तान में?

पाकिस्तान में इमरान ख़ान की पार्टी तहरीक-ए-इंसाफ़ और कनाडा से अचानक पाकिस्तान में अवतरित हुए मौलाना ताहिर-उल-क़ादरी की पार्टी पाकिस्तान अवामी तहरीक़ के नेतृत्व में हज़ारों प्रदर्शनकारी नवाज़ शरीफ़ सरकार के इस्तीफ़े की माँग को लेकर अगस्त के मध्य से संसद के बाहर डेरा डाले हुए हैं। आम तौर पर पाकिस्तान की ऐसी छवि प्रस्तुत की जाती है मानो वह भारत और विश्व के लिए आसन्न ख़तरा हो जबकि सच्चाई तो यह है कि पाकिस्तान की सेना और वहाँ के इस्लामिक कट्टरपन्थी सबसे ज़्यादा ख़तरा तो वहाँ की आम मेहनतकश आबादी के लिए पैदा कर रहे हैं। पाकिस्तानी तालिबान के आतंकी दस्ते सेना के ठिकानों पर हमला कर रहे हैं और सेना उनके ख़िलाफ़ ऑपरेशन ज़र्ब-ए-अज़्ब का संचालन कर रही है। पाकिस्तान इस समय गम्भीर आर्थिक संकटों से घिरा हुआ है। वर्ष 2008 के बाद से ही वहाँ की अर्थव्यवस्था पटरी से उतरी हुई है। असल में पाकिस्तान के वर्तमान संकट के मूल में आर्थिक संकट ही है। ऐसे समयों में शासक वर्ग के विभिन्न धड़े आपस में टकराने लगते हैं और आज पाकिस्तान में यही हो रहा है।

वर्ष 2013 में सम्पन्न हुए चुनावों के बाद नवाज़ शरीफ़ के नेतृत्व में पाकिस्तान मुस्लिम लीग (नवाज़) की सरकार बनने के कुछ ही महीनों के भीतर पाकिस्तानी अर्थव्यवस्था डाँवाडोल होने लगी थी। बढ़ती ग़रीबी, महँगाई, बेरोज़गारी और बिजली, पेट्रोल तथा गैस की बढ़ती क़ीमतों के कारण नयी सरकार जल्दी ही लोकप्रियता खोने लगी। सत्ता सँभालने के कुछ ही महीनों के भीतर सरकार और सेना के बीच भारत के साथ सम्बन्धों के मसले पर, पाकिस्तान में तालिबान पर नकेल कसने के मसले पर एवं परवेज़ मुशर्रफ़ को लेकर मतभेद उभरने शुरू हो गये थे। पिछले साल ही पाकिस्तान के उत्तर-पूर्व में स्थित ख़ैबर-पख़्तूख़्वा प्रदेश में इमरान ख़ान की तहरीक-ए-इंसाफ़ ने सरकार बनायी थी। परन्तु जल्द ही यह सरकार भी लोकप्रियता खोने लगी।

वर्तमान संकट ने उस समय रूपाकार ग्रहण करना शुरू किया जब इस साल की गर्मियों में सेना ने उत्तर-पश्चिमी पाकिस्तान के इलाकों में ऑपरेशन ज़र्ब-ए-अज़्ब शुरू किया। पहले यहाँ हवाई गोलाबारी की गयी और फिर पैदल सेना और टैंकों को ज़मीनी कार्रवाई में उतार दिया। हाल ही में सेना ने बताया है कि उस ऑपरेशन के दौरान अब तक 900 आतंकी मारे जा चुके हैं। सैन्य कार्रवाई शुरू होते ही पाकिस्तान अवामी तहरीक़ के मौलाना क़ादरी ने खुलकर इन हमलों की वकालत की और सेना के समर्थन में हर शुक्रवार रैली आयोजित करने की घोषणा कर डाली। मौलाना क़ादरी सूफ़ी इस्लाम के एक हल्की कट्टरपन्थी धारा के विचारक हैं। इनका आधार मुख्यत: निम्न-मध्यवर्ग में है। ये जनाब वैसे तो इंक़लाब की बात करते हैं लेकिन वास्तव में इनका राजनीतिक एजेण्डा लोकरंजकतावाद की चाशनी में लिपटा हुआ प्रतिक्रियावाद ही है। पाकिस्तान की राजनीति में इनका उभार एक हालिया परिघटना है। उधर इमरान ख़ान, जो मध्यवर्ग और कुछ हद तक उच्च-मध्यवर्ग में लोकप्रिय हैं, के लिए यह सम्भव न था कि वे सेना के इस ऑपरेशन का खुला विरोध करते। इसलिए उन्होंने सरकार पर दबाव बनाने के मक़सद से चुनाव के 14 महीनों बाद बूथ रिगिंग का आरोप लगाते हुए आज़ादी मार्च की घोषणा की और नवाज़ शरीफ़ सरकार के इस्तीफ़े की माँग की।

सेना, तहरीक़-ए-इसाफ़ और कादरी तथा पाकिस्तान की जनता का एक छोटा सा मध्यमवर्गीय हिस्सा अपनी-अपनी वजहों से पाकिस्तानी सरकार के ख़िलाफ़ उतर पड़ा है। लेकिन इन तथाकथित आन्दोलनों की आड़ में यह सच्चाई आँख से ओझल कर दी जाती है कि पाकिस्तान के मौजूदा अराजक माहौल के लिए वहाँ का आर्थिक संकट की एक बड़ी भूमिका है। 2008 की शुरुआत से ही पाकिस्तान के आर्थिक हालात बेहद ख़राब हैं। आर्थिक संकट से उबरने के लिए विश्व मुद्रा कोष से लिए गये कर्ज़ ने हालात बद से बदतर बना दिये हैं। इन क़र्ज़ों की अदायगी पाकिस्तान की आम मेहनतकश आबादी पर करों का भारी बोझ लादकर तथा सामाजिक कल्याण-कारी ख़र्चों में कटौती करके की जा रही है जिससे वहाँ की जनता त्राहि-त्राहि कर रही है और एक भयंकर जनाक्रोश पनप रहा है।

पाकिस्तान का शासक वर्ग ऐसी परिस्थितियों से घिरा है जहाँ जनता का भीतर ही भीतर उबलता आक्रोश और कंगाली के कग़ार पर खड़ी अर्थव्यवस्था को लगने वाला एक हल्का सा झटका भी उसके अस्तित्व को समाप्त कर सकता है। यही वजह है कि पाकिस्तानी शासक अपनी डूबती अर्थव्यवस्था की ऋण-आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए साम्राज्यवाद के सामने घुटने टेकते हैं। इसके साथ ही साथ वे आम जनता के दबे हुए आक्रोश को भारत विरोधी युद्धोन्माद या फिर धार्मिक उन्माद में बदलकर अपनी जान बचाने की कोशिश करते हैं। यह रणनीति अल्पकालिक तौर पर कुछ कारगर होते हुए भी दीर्घकालिक नज़रिये से आत्मघाती है।

दरअसल पाकिस्तान में पूँजीवादी विकास की दिशा कुछ इस तरह रही कि सेना के कुछ अधिकारियों का एक बड़ा तबका स्वयं पूँजीपति में तब्दील हो गया। इसका अन्दाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि आज सेना के मुट्ठी भर अधिकारी पाकिस्तान के सकल घरेलू उत्पाद का 7 फ़ीसदी हिस्सा नियंत्रित करते हैं। पाकिस्तान के एक-तिहाई भारी उद्योग का स्वामित्व सेना के पास है। सेना 11.58 लाख हेक्टेयर भूमि की स्वामी है। आज सेना पाकिस्तानी अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में मौजूद है। इस तरह पाकिस्तान में एक क़िस्म का सैन्य-औद्योगिक तन्त्र मौजूद है जिसके पास जबर्दस्त आर्थिक ताक़त है और वह सामरिक शक्ति का भी संचालन करता है। यह एक राजनीतिक रूप से समझदार वर्ग है जो जानता है कि नग्न सैन्य तानाशाही दीर्घकाल में उसके लिए घातक है। लेकिन जब कभी नागरिक शासन उसकी अपेक्षाओं पर ख़रा नहीं उतरता या फिर अपने राजनीतिक संकटों का समाधान नहीं ढूँढ़ पाता तो ऐसे में वह स्वयं ही आगे बढ़कर शासन की बागडोर सँभाल लेता है और इस तरह पूँजी के शासन की रक्षा करता है। यही वजह है कि पाकिस्तानी सेना ने स्वयं को कभी भी लोकतन्त्र के विकल्प के रूप में प्रस्तुत नहीं किया। उसने हमेशा ही अपने आप को लोकतन्त्र का रक्षक बतलाया और अनुकूल परिस्थितियाँ होने पर नागरिक सरकारों को सत्ता-हस्तान्तरण भी किया।

सेना के साथ ही साथ पाकिस्तान की राजनीति में इस्लामिक कट्टरपन्थियों की भी एक बड़ी भूमिका रही है। इस परिघटना को समझने के लिए थोड़ा सा इतिहास में जाना ज़रूरी है। इस्लामिक कट्टरपन्थ का उभार हमारे समकालीन इतिहास की परिघटना है। 1970 के दशक के अन्त में पाकिस्तान के तानाशाह जनरल जियाउल हक़ ने अमेरिका के सहयोग से पाकिस्तान के इस्लामीकरण की मुहिम शुरू की। इसमें अमेरिका का हित यह था कि वह अफ़ग़ानिस्तान में वामपन्थी सरकार का तख़्ता-पलट करना चाहता था एवं सोवियत संघ के सैन्य हस्तक्षेप का मुक़ाबला करना चाहता था और इसीलिए उसने पाकिस्तान की ख़ुफ़िया एजेंसी आईएसआई की मदद से मुजाहिद्दीनों को सैन्य प्रशिक्षण एवं हथियारों की सप्लाई शुरू की। पाकिस्तान के देवबन्दी मदरसों ने आतंकवादियों की फौज खड़ा रकने में बहुत बड़ी भूमिका अदा की। अल-कायदा और तालिबान जैसे संगठन उसी दौर की पैदाइश हैं। 11 सितंबर 2001 को अमेरिका के विश्व व्यापार केन्द्र की इमारत पर अल क़ायदा ने आतंकवादी हमले के साथ ही अमेरिका की आतंकवादियों के साथ मिलकर युद्ध करने की नीति का स्थान 'आतंक के ख़िलाफ़ युद्ध' ने ले लिया। साम्राज्यवाद पर अपनी निर्भरता के चलते पाकिस्तान को आतंक के ख़िलाफ़ अमेरिका के युद्ध का न चाहते हुए भी साथ देना पड़ा। अब पाकिस्तानी सेना की मज़बूरी थी वो अपनी सीमाओं के भीतर आतंकियों के तन्त्र को निशाना बनाये। इसके कारण पाकिस्तानी राजनीति में कई बदलाव आये। सबसे पहले तो इसके कारण पाकिस्तानी तालिबान और सेना के बीच दुश्मनाना सम्बन्ध पैदा हुए। पाकिस्तानी तालिबान द्वारा सेना के ठिकानों पर किये गये हालिया हमले इसी का नतीजा हैं। दूसरे, सेना और देवबन्दियों के बीच पुरानी निकटता में दरार पैदा हुई। पाकिस्तान की राजनीति में सेना देवबन्दियों का दोहरा इस्तेमाल करती रही है। एक ओर तो वे भारत के ख़िलाफ़ युद्धोन्माद भड़काने में सेना की मदद किया करते थे तो दूसरी ओर अपने ही देश की नागरिक सरकार के ख़िलाफ़ दबाव बनाने के लिए जनान्दोलनों को संगठित भी करते थे। लेकिन बदले हुए मौजूदा हालातों में देवबन्दियों द्वारा खाली की गयी जगह की भरपायी इमरान और कादरी की पार्टियाँ कर रही हैं। हलाँकि यह भी ध्यान रखना ज़रूरी है कि ये पार्टियाँ पाकिस्तान में मध्यवर्ग के बढ़ते प्रभाव की स्वाभाविक राजनीतिक अभिव्यक्तियाँ भी हैं।

बहरहाल, अभी हालात यह हैं कि 14 अगस्त को शुरू हुआ गतिरोध इस लेख के लिखे जाने तक बरक़रार था। तहरीक़-ए-इंसाफ़ को छोड़ दिया जाये तो सम्पूर्ण विपक्ष सरकार के साथ इस मुद्दे पर एकजुट होकर दृढ़ता के साथ खड़ा है। उन्होंने नवाज़ शरीफ़ के इस्तीफ़े की माँग को सिरे से ख़ारिज़ कर दिया है। सेना पूरे मसले पर क़रीबी नज़र रखे हुए है। अपने पुराने अनुभवों से सबक लेते हुए तथा पाकिस्तानी जनता के बीच सैन्य शासन की अलोकप्रियता को देखते हुए वह अभी सीधे हस्तक्षेप से बच रही है और घटनाओं को परोक्ष रूप से प्रभावित करने की कोशिशों में लगी हुई है।

एक बात तय है कि पाकिस्तानी जनता के जीवन में तब तक कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं होने वाला है जब तक कि वह स्वयं अपने समाज के भीतर से नयी परिवर्तनकामी शक्तियों को संगठित कर वर्तमान पूँजीपरस्त जनविरोधी तन्त्र को ही नष्ट करने और एक नये समतामूलक समाज को बनाने की दिशा में आगे नहीं बढ़ती। इमरान ख़ान और क़ादरी के आन्दोलनों का हश्र चाहे जो भी हो उससे पाकिस्तानी अवाम की ज़िन्दगी में कोई बेहतरी नहीं होने वाली है।

– तपिश

नकली ट्रेड यूनियनों से सावधान!

(पेज 6 से आगे)

लगवाने के लिए ग़रीब किसानों को गोलियों से भून दिया गया। अभी हाल के वर्षों में पूरे देश और दुनिया भर में चर्चा का विषय बना मारुति सुजुकी के मज़दूर आन्दोलन को सीटू ने ऐसा बेच खाया कि बहुत से मज़दूरों की ज़िन्दगी तबाह हो गयी। आज भी मारुति सुजुकी के 147 मज़दूर जेलों में बन्द हैं। इस पूरे आन्दोलन के दौरान सीपीएम के सांसद लोकसभा में सोते रहे। मारुति का आन्दोलन सही तरीके से लड़ा जाता तो इसे गुड़गाँव के ऑटो सेक्टर के लाखों मज़दूरों का व्यापक आन्दोलन बनाया जा सकता था। लेकिन सीटू ऐसा कभी नहीं चाहेगी क्योंकि वह भी मालिकों की सेवा करती है। वैसे, सच तो यह है कि अब मज़दूर वर्ग के ये ग़द्दार चाहकर भी कोई व्यापक और जुझारू आन्दोलन नहीं खड़ा कर सकते। न तो उनमें ऐसा करने का दम रह गया है और न ही उतनी ऐसा करने की औकात रह गयी है। सीटू की ग़द्दारी की कहानी इतनी ही नहीं है। साहिबाबाद के एलाइड निप्पोन की घटना से लेकर ई.आई.डी. गाजियाबाद (जिसमें 300 से ज़्यादा मज़दूर अपनी उँगलियाँ कटवा चुके हैं) तक मज़दूर सीटू के नेताओं की दग़ाबाज़ी के शिकार हुए हैं। सीटू को अगर देश की ग़द्दार नम्बर वन ट्रेड यूनियन कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। बंगाल और केरल में जहाँ सीपीएम की सरकारें लम्बे-लम्बे समय तक रहीं वहाँ सीटू का मुख्य काम था मज़दूरों को इतना दबाकर रखना कि वे कुछ बोल ही न सकें।

ऐक्टू सीपीआई (एम-एल, लिबरेशन) की मज़दूर यूनियन है। यह पार्टी भी पिछले करीब तीस वर्ष से चुनावी राजनीति में है। अब ये सीपीआई, सीपीएम के साथ गठबन्धन करके चुनाव लड़ रही है। इसके विधायक ऐसे हैं जिन्हें कुछ पैसे देकर लालू यादव ख़रीद लेते हैं। चुनावी राजनीति के कीचड़ में लोट लगाते हुए उसका लाल रंग धुल चुका है। ऐक्टू की ग़द्दारी दिल्ली के करावलनगर में बादाम मज़दूरों के आन्दोलन और हाल में हुए वजीरपुर के गरम रोला मज़दूरों के आन्दोलन में दिखायी दी। करावलनगर के मज़दूरों ने वहाँ ऐक्टू के स्थानीय नेता को भगा दिया और अब वह नेता नीतीश कुमार की पार्टी में शामिल हो गया है। भवन निर्माण से जुड़े मज़दूरों का जो सरकारी कार्ड बनाया जा रहा है उसमें भी इनके स्थानीय नेता मज़दूरों से 500–1000 रुपये तक वसूलते हैं, जबकि कार्ड बनवाने का सरकारी ख़र्च मात्र पच्चीस रुपये है। इनके अलावा छोटी-छोटी स्थानीय यूनियनें भी अपनी दुकानदारी चला रही हैं। इन सबका एक ही काम है थोड़ी-बहुत रस्म अदायगी करना और अन्दरखाने मालिकों की सेवा में जुटे रहना। ट्रेड यूनियन वर्ग संघर्ष के लिए मज़दूरों की प्रारम्भिक पाठशाला है और इसके माध्यम से उन्हें राजनीतिक तौर पर प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। यूनियन मज़दूरों को संगठित करने, उनमें वर्ग चेतना जगाने और उनके आर्थिक हितों की रक्षा करने के लिए भी है। लेकिन ये तमाम केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें मज़दूरों से ग़द्दारी कर चुकी हैं। इसलिए, मज़दूर आन्दोलन को बिखराव और हताशा के दलदल से निकालकर एक क्रान्तिकारी दिशा और जुझारू धार देने के वास्ते इन धन्धेबाज़ों और दलालों का पर्दाफाश करना और मज़दूर वर्ग के बीच से इनको जड़मूल समेत उखाड़कर फेंक देना ज़रूरी है।

– नवीन

आधुनिक संशोधनवाद के विरुद्ध संघर्ष को दिशा देने वाली 'महान बहस' के 50 वर्ष

मज़दूर आन्दोलन के विचारधारात्मक विकास और व्यवहारिक प्रयोगों के पूरे दौर में नेतृत्व के बीच से संशोधनवादी भितरघाती पैदा होते रहे हैं जो क्रान्तियों के सबसे बड़े दुश्मन सिद्ध हुए। मार्क्स-एंगेल्स और लेनिन से लेकर स्तालिन तथा माओ तक कम्युनिस्ट आन्दोलन का सैद्धान्तिक विकास वैज्ञानिक समाजवाद की विचारधारा में तोड़-मरोड़ की कोशिशों और संशोधनवाद के विरुद्ध संघर्ष करते हुए ही हुआ है।

आज पूरी दुनिया के मज़दूरों के सामने स्तालिन-कालीन सोवियत संघ के समाजवादी प्रयोग, ख्रुश्चेवी संशोधनवाद से दुनिया के कम्युनिस्ट आन्दोलन को हुए नुकसान और माओ के नेतृत्व में हुई चीन की सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के महान अनुभव मौजूद हैं। इन अनुभवों ने आने वाले समय में मज़दूर वर्ग को समाजवादी क्रान्ति के महान लक्ष्य को पूरा करने और पूँजीवाद से कम्युनिस्ट समाज तक के लम्बे संक्रमण काल के दौरान क्रान्तिकारी संघर्ष चलाने की सैद्धान्तिक समझ को आधुनिक हथियारों से लैस किया है।

1953 में स्तालिन की मृत्यु के बाद 1956 में आधुनिक संशोधनवादियों ने सोवियत संघ में पार्टी और राज्य पर कब्ज़ा कर लिया और ख्रुश्चेव ने स्तालिन की "ग़लतियों" के बहाने मार्क्सवाद-लेनिनवाद के बुनियादी उसूलों पर ही हमला शुरू कर दिया। उसने "शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व, शान्तिपूर्ण प्रतियोगिता और शान्तिपूर्ण संक्रमण" के सिद्धान्त पेश करके मार्क्सवाद से उसकी आत्मा को यानी वर्ग संघर्ष और सर्वहारा अधिनायकत्व को ही निकाल देने की कोशिश की। मार्क्सवाद पर इस हमले के ख़िलाफ़ छेड़ी गयी "महान बहस" के दौरान माओ ने तथा चीन और अल्बानिया की कम्युनिस्ट पार्टियों ने मार्क्सवाद की हिफ़ाज़त की। दुनिया के पहले समाजवादी देश में पूँजीवादी पुनर्स्थापना की शुरुआत दुनियाभर के सर्वहारा आन्दोलन के लिए एक भारी धक्का थी, लेकिन महान बहस, चीन में जारी समाजवादी प्रयोगों और चीनी पार्टी के इर्द-गिर्द दुनियाभर के सच्चे कम्युनिस्टों के गोलबन्द होने पर विश्व मजदूर आन्दोलन की आशाएँ टिकी हुई थीं।

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा 1963 से 1964 के बीच चलायी गयी महान बहस ने मार्क्सवाद-लेनिनवाद और आधुनिक संशोधनवाद के बीच एक विभाजक रेखा खींचकर निर्णायक संघर्ष का आरम्भ किया था। इस दौर में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी तीन "शान्तिपूर्ण" सिद्धान्तों, "समूची जनता का राज्य" तथा "समूची जनता की पार्टी" जैसे सिद्धान्तों को पेश कर अपनी संशोधनवाद नीतियों को एक पूर्ण व्यवस्था के रूप में लागू करने तथा मज़दूर वर्ग से साम्राज्यवादी शक्तियों के सामने हथियार डालकर आत्मसमर्पण करवाने का काम कर रही थी। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने ख्रुश्चेवी संशोधनवाद के विरुद्ध विचारधारात्मक संघर्ष का आरम्भ किया और संशोधनवादी सोवियत पार्टी द्वारा चीनी पार्टी पर किये जा रहे सभी प्रहारों का जवाब देते हुए क्रान्तिकारी मार्क्सवादी-लेनिनवादी कार्यदिशा को पूरी दुनिया के कम्युनिस्टों के सामने स्पष्ट किया।

चीन और रूस के बीच चल रही आरम्भिक बहसों को पूरी दुनिया की कम्युनिस्ट पार्टियों के सामने नहीं रखा गया था और 1956 से 1962 के बीच चीनी पार्टी ने ख्रुश्चेवी संशोधनवादी नीतियों के विरुद्ध खुला संघर्ष आरम्भ नहीं किया था, लेकिन 1963 से 1964 के बीच चीनी पार्टी ने पूरे कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास का समाहार प्रस्तुत किया और समाजवादी संक्रमणकाल की समझ को गुणात्मक रूप से विकसित करते हुए मार्क्सवादी-लेनिनवादी आम कार्यदिशा के विकास में ऐतिहासिक भूमिका निभायी। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने 14 जून 1963 को 25 सूत्रीय कार्यक्रम का प्रस्ताव सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के नाम प्रकाशित किया और इसके बाद 14 जुलाई 1964 तक इस 25 सूत्रीय कार्यक्रम की व्याख्या करते हुए एक के बाद एक 9 टिप्पणियाँ प्रकाशित कीं जिन्हें 'महान बहस' के नाम से जाना जाता है।

महान बहस के दौरान चीनी पार्टी ने मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्तों की सुस्पष्ट समझ के साथ पूरी दुनिया की कम्युनिस्ट पार्टियों के सामने यह रेखांकित किया कि ख्रुश्चेव जिस संशोधनवादी लाइन का नेतृत्व कर रहा था वे सोवियत संघ में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना करने की नीतियाँ थीं। चीनी पार्टी ने स्पष्ट किया कि समाजवादी संक्रमण के दौरान सर्वहारा अधिनायकत्व के तहत सतत् वर्ग-संघर्ष जारी रखना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि समाजवाद कम्युनिज़्म की ओर आगे बढ़ने का एक संक्रमण काल है। इस दौरान वर्गों और वर्ग संघर्ष को नकारने का अर्थ है संशोधनवाद का रास्ता अख़्तियार कर पूँजीवादी पुनर्स्थापना के लिए ज़मीन तैयार कर देना। मार्क्सवाद बताता है कि समाजवादी समाज पूँजीवाद और साम्यवाद के बीच की एक काफ़ी लम्बी अवधि होती है। इस पूरी अवधि में वस्तुओं का बाज़ार-मूल्य बना रहता है, माल-अर्थव्यवस्था का अस्तित्व क़ायम रहता है, बाज़ार एवं मूल्य के नियम काम करते रहते हैं और लम्बे समय तक, कम्युनिज़्म के निकट पहुँचने तक, 'हरेक को उसके काम के अनुसार' का सिद्धान्त लागू रहता है, यानी श्रम एक माल ही बना रहता है। इस पूरे दौर में वर्ग मौजूद रहते हैं और वर्ग संघर्ष जारी रहता है। समाजवाद के इस पूरे दौर में ऊपरी ढाँचे में मौजूद वर्गीय धाराएँ-प्रवृत्तियाँ भी कम्युनिज़्म की ओर प्रगति की दिशा उलट देने के लिए सक्रिय भौतिक शक्ति के रूप में लम्बे समय तक मौजूद रहती हैं। शारीरिक श्रम और मानसिक श्रम के बीच, शहर और देहात के बीच तथा उद्योग और कृषि के बीच अन्तर बने रहते हैं, और समाज में बुर्जुआ अधिकार मौजूद होते हैं। इन अन्तरों को एक लम्बे दौर में ही समाप्त किया जा सकता है। सोवियत संघ तथा चीन के समाजवादी अनुभवों का निचोड़ भी यही साबित करता है कि समाजवादी समाज एक अत्यन्त लम्बी ऐतिहासिक मंज़िल तक मौजूद रहता है। इस पूरे दौर में पूँजीपति और सर्वहारा के बीच वर्ग-संघर्ष जारी रहता है तथा पूँजीवादी रास्ते और समाजवादी रास्ते में से कौन विजयी होगा, यह तय नहीं होता। इस पूरे दौर में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना का ख़तरा बना रहता है।

महान बहस ने यह स्पष्ट किया कि ख्रुश्चेव ने सोवियत संघ में सर्वहारा अधिनायकत्व को पूँजीवादी अधिनायकत्व में रूपान्तरित कर दिया था, जहाँ पैदा हो चुके मुट्ठीभर विशेषाधिकार प्राप्त पूँजीवादी तबके पार्टी पदाधिकारियों से मिलकर विशेष सुविधाएँ हासिल कर रहे थे, व्यक्तिगत फायदों के लिए सार्वजनिक उद्योगों से चोरी कर रहे थे, और सार्वजनिक उपक्रमों पर अपने व्यक्तिगत अधिकार के लिए जमीन तैयार कर चुके थे। यह विशेषाधिकार प्राप्त पूँजीवादी तबका अपने व्यक्तिगत हितों के लिए मज़दूरों का शोषण करने लगा था। पार्टी और राज्य के पदाधिकारियों तथा जनता के बीच सम्बन्ध शोषक और शोषित के सम्बन्धों में बदल चुके थे और समाजवादी उत्पादन सम्बन्ध पुनः पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्धों में रूपान्तरित हो चुके थे।

इस विश्लेषण को आगे विकसित करते हुए चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने समाजवादी समाज में पार्टी के अन्दर पैदा होने वाले पूँजीवादी तत्वों के विरुद्ध सतत् वर्ग संघर्ष चलाने और व्यापक जन-चौकसी को मज़बूत बनाने की आवश्यकता को रेखांकित किया। इससे पहले सोवियत संघ में स्तालिन काल तक यह माना जा रहा था कि समाजवाद में पूँजीवादी पुनर्स्थापना का मुख्य स्रोत साम्राज्यवादी हस्तक्षेप ही हो सकता है। सांस्कृतिक क्रान्ति की आवश्यकता के बारे में लेनिन द्वारा दिये गये सूत्र को आगे बढ़ाते हुए माओ के नेतृत्व में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने आर्थिक मूलाधार और अधिरचना में मौजूद पूँजीवादी पुनर्स्थापना के कारक तत्वों की गतिकी को समझा और समाजवाद में वर्ग संघर्ष के संचालन और पूँजीवादी पुनर्स्थापना के लिए प्रयत्नशील बुर्जुआ तत्वों के आधारों को नष्ट करने तथा कम्युनिज़्म तक संक्रमण के बारे में विचारधारात्मक निष्कर्ष प्रस्तुत किये। इसके आधार पर महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के ऐतिहासिक प्रयोग ने "सर्वहारा वर्ग के सर्वतोमुखी अधिनायकत्व के अन्तर्गत सतत् क्रान्ति" और "अधिरचना में क्रान्ति" के सिद्धान्तों को विकसित किया।

महान बहस में माना गया कि स्तालिन ने कुछ उसूली भूलें कीं और कुछ व्यावहारिक कार्यों के दौरान ग़लतियाँ हुईं, जिनमें से कुछ ग़लतियों से बचा जा सकता था। विचारधारात्मक ग़लतियों के मामले में स्तालिन द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से विचलित हुए और कुछ सवालों पर आधिभौतिकवाद और मनोगतवाद के शिकार हुए। पार्टी के अन्दर के तथा पार्टी के बाहर के, दोनों ही प्रकार के संघर्षों में, कुछ मौकों और कुछ सवालों पर, हमारे और शत्रु के बीच तथा जनता के अपने अन्दर के, इन दो प्रकार के अन्तर्विरोधों से निपटने के अलग-अलग तरीकों के बारे में भी वे भ्रान्तियों के शिकार हुए। यह घोषित करना कि सोवियत संघ में वर्ग और वर्ग-संघर्ष समाप्त हो गया है, स्तालिन की एक विचारधारात्मक ग़लती थी। लेकिन आज अमेरिकी शोधकर्ता ग्रोवर फर और रूसी शोधकर्ता यूरी जोखोव जैसे कई इतिहासकारों ने स्तालिन कालीन सोवियत संघ के पुराने दस्तावेज़ों के अध्ययन के आधार पर अनेक सबूतों के साथ कई नये खुलासे किये हैं जिनके आधार पर उस दौर में हुई व्यावहारिक ग़लतियों की पृष्ठभूमि समझने में मदद मिलती है कि किन परिस्थितियों में पार्टी में मौजूद पूँजीवादी तत्वों के विरुद्ध स्तालिन के नेतृत्व में संघर्ष किया जा रहा था।

अक्टूबर 1917 में क्रान्ति होने के बाद सोवियत संघ में पार्टी के अन्दर विशेषाधिकार प्राप्त पूँजीवादी पथगामी लगातार पैदा हो रहे थे और पहले समाजवादी राज्य की रक्षा में इन भ्रष्ट तत्वों के विरुद्ध लेनिन और स्तालिन के दौर में लगातार संघर्ष चलाया गया। लेकिन संघर्ष के सही विचारधारात्मक स्वरूप का विस्तार न कर पाने के कारण पूरा भरोसा राज्य के पदाधिकारियों पर किया गया और उनकी मदद से सजा देने का काम किया गया जिससे पार्टी में मौजूद षडयन्त्रकारियों को अतिशय रूप से सजा देकर स्तालिन तथा राज्य को बदनाम करने का मौका मिल गया। इन सभी ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर देखें तो पार्टी और दुश्मन तथा जनता के बीच अन्तरविरोधों को हल करने की जो विचारधारात्मक समझ चीनी पार्टी ने महान बहस में प्रस्तुत की वह सही है कि स्तालिन उस दौर में इन अन्तरविरोधों को हल करने की सही लाइन विकसित नहीं कर सके, यह स्तालिन की ग़लती नहीं बल्कि उस दौर की एक व्यवहारिक सीमा थी। चूँकि सोवियत संघ में पहली बार समाजवादी निर्माण का प्रयोग किया जा रहा था जिसका कोई अनुभव मौजूद नहीं था, ऐसे में उस समय स्तालिन का मुख्य सैद्धान्तिक भटकाव यह था कि वे पार्टी में पैदा हो रहे षड्यन्त्रकारियों और पूँजीवादी पथगामियों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए उनके पैदा होने की विचारधारात्मक जमीन की तलाश नहीं कर सके।

इन सैद्धान्तिक ग़लतियों के साथ ही यह भी सच है कि 1917 में अक्टूबर क्रान्ति के बाद सोवियत संघ में समाजवादी निर्माण के पहले ऐतिहासिक प्रयोग के दौरान लेनिन और फिर स्तालिन के नेतृत्व में सर्वहारा की संगठित शक्ति ने प्रतिक्रान्तिकारियों द्वारा क्रान्ति का तख़्तापलट करने के मंसूबों पर पानी फेरने से लेकर द्वितीय विश्व युद्ध तक पूरी दुनिया को हिटलर और फासीवाद से मुक्ति दिलाने में अभूतपूर्व सफलता के साथ नेतृत्व किया था। सोवियत संघ में जनता के जीवन स्तर में गुणात्मक वृद्धि हुई थी, बेरोज़गारी और ग़रीबी जैसी पूँजीवादी बीमारियों को जड़ से समाप्त कर दिया गया था, महिलाओं को समाज में बराबरी का दर्जा किसी भी अन्य पूँजीवादी देश से बेहतर रूप में मिला हुआ था, शिक्षा और स्वास्थ्य का समान अधिकार हर व्यक्ति को मिल चुका था और नाममात्र की जनसंख्या अशिक्षित बची थी, औद्योगिक, तकनीकी तथा वैज्ञानिक विकास के क्षेत्र में सोवियत संघ अनेक सफलताएँ हासिल कर रहा था। सोवियत संघ के समाजवादी प्रयोगों ने पूरी दुनिया की मेहनतकश जनता के सामने यह सिद्ध कर दिया था कि सर्वहारा वर्ग की समाजवादी सत्ता, जो एक वर्गहीन समाज के निर्माण के लिए संघर्षरत है, मानव समाज के विकास में सभी पुराने वर्ग समाजों की तुलना में आगे की ओर एक लम्बी छलांग है।

इन महान सफलताओं के दौर में स्तालिन के नेतृत्व की मान्यता के रहते ख्रुश्चेव के चारों ओर संगठित हुए विशेषाधिकार प्राप्त भ्रष्ट गुटों और पूँजीवादी पथगामियों के लिए अपनी संशोधनवादी नीतियाँ लागू करना सम्भव नहीं था। 1953 में स्तालिन की मृत्यु के बाद पार्टी के नेतृत्व पर काबिज़ हो गये इस गुट के लिए ज़रूरी था कि अपनी सर्वहारा विरोधी नीतियों पर पर्दा डालने के लिए वे पहले स्तालिन और स्तालिन के पूरे दौर को बदनाम करें। 1953 से 1956 तक ख्रुश्चेव ने सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दर इस संशोधनवादी खेमे के समर्थन आधार का विस्तार किया और 1956 की 20वीं पार्टी कांग्रेस में अपना गुप्त भाषण पढ़ा जिसमें "व्यक्ति पूजा" समाप्त करने के नाम पर स्तालिन पर अनेक झूठे आरोप लगाये और सोवियत संघ में समाजवादी संक्रमण के दैरान हुई सभी ग़लतियों के लिए स्तालिन को दोषी ठहराया। स्तालिन पर कीचड़ उछालकर ख्रुश्चेव ने सर्वहारा वर्ग के नेता के रूप में स्तालिन को ही नहीं बल्कि उस पूरे दौर में लागू की गयी नीतियों, सर्वहारा अधिनायकत्व और समाजवादी संक्रमण के मार्क्सवादी- लेनिनवादी सिद्धान्त को पूरी दुनिया में बदनाम करने की धूर्ततापूर्ण कोशिश की। इसने पूरे विश्व के मज़दूर आन्दोलन में सैद्धान्तिक स्तर पर एक विभ्रम की स्थिति पैदा कर दी।

साम्राज्यवादियों द्वारा परमाणु बम की गीदड़ भभकियों से भयभीत होकर ख्रुश्चेव समाजवादी खेमे में यह प्रचार कर रहा था कि साम्राज्यवादी देशों के साथ समाजवादी देशों का शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व सम्भव है। और यदि समाजवादी अपनी तरफ से इस "शान्ति" के लिए प्रयास नहीं करेंगे तो आने वाले समय में परमाणु युद्ध से पूरी मानवता का भविष्य नष्ट हो जायेगा। ख्रुश्चेव ने साम्राज्यवाद के साथ कई समझौते किये, और क्रान्तिकारी सोवियत जनता द्वारा साम्राज्यवादियों के सामने हथियार डलवा देने के अपने नीचतापूर्ण मंसूबों को अंजाम दिया। यह ख्रुश्चेव का एक बेहद कायरतापूर्ण क़दम था और मेहनतकश जनता की अनेक कुर्बानियों के साथ खुली ग़द्दारी थी।

महान बहस में युद्ध और शान्ति के सवाल को स्पष्ट करते हुए बताया गया कि वैश्विक स्तर पर शान्ति तब तक हासिल नहीं की जा सकती और साम्राज्यवादी युद्धों के ख़तरों को तब तक नहीं टाला जा सकता जब तक पूरी दुनिया के सभी देशों के मेहनतकश मज़दूर समाजवाद की स्थापना नहीं कर लेते। लेनिन ने पहले ही कहा था कि विदेश नीति का बुनियादी उसूल सर्वहारा अन्तरराष्ट्रीयतावाद है जो साम्राज्यवादी आक्रमण और युद्ध की नीति के विरुद्ध है। ख्रुश्चेव की नीतियों को बेपर्दा करते हुए चीनी पार्टी ने महान बहस में स्पष्ट किया कि साम्राज्यवाद के मौजूद रहते विश्व शान्ति हासिल नहीं की जा सकती। हर समाजवादी राज्य का अन्तिम लक्ष्य पूरी दुनिया के स्तर पर एक साम्यवादी समाज की स्थापना करना है, अकेले एक देश में कम्युनिस्ट समाज की स्थापना सम्भव नहीं है और पूरी दुनिया के सभी देशों में एक साथ समाजवादी क्रान्ति भी सम्भव नहीं है इसलिए एक देश में समाजवादी क्रान्ति होने के बाद समाजवादी राज्य की ज़िम्मेदारी होगी कि वह अन्य देशों में संघर्षरत मज़दूरों की मदद करे। समाजवाद सभी देशों में एक साथ विजयी नहीं हो सकता। वह पहले किसी एक देश में या कुछ देशों में विजयी होगा, जबकि बाकी देश कुछ समय तक पूँजीवादी

(पेज 12 पर जारी)

आधुनिक संशोधनवाद के विरुद्ध संघर्ष को दिशा देने वाली महान बहस के 50 वर्ष

(पेज 11 से आगे)

या पूर्व-पूँजीवादी ही रहेंगे। एक देश में समाजवाद की स्थापना का दूरगामी उद्देश्य है कि वह समाजवादी देश पूरी दुनिया के स्तर पर कम्युनिस्ट आन्दोलनों की मदद करने में अपनी भूमिका निभाये।

लेकिन इसके साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया कि सर्वहारा अन्तरराष्ट्रीयतावाद के तहत अलग-अलग समाज व्यवस्थाओं वाले देशों के साथ समाजवादी देश के शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व का यह अर्थ नहीं है कि वह उनके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करे। वर्ग-संघर्ष, राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष तथा विभिन्न देशों में पूँजीवाद से समाजवाद में संक्रमण... ये सब संघर्ष कटु और जीवन-मरण के संघर्ष हैं, जिनका उद्देश्य समाज-व्यवस्था को बदलना है। शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व जनता के क्रान्तिकारी संघर्षों की जगह नहीं ले सकता। किसी भी देश में पूँजीवाद से समाजवाद में संक्रमण केवल उस देश की सर्वहारा क्रान्ति और सर्वहारा अधिनायकत्व के ज़रिए ही हो सकता है। विश्व युद्ध और परमाणु बमों से डरकर युद्ध को नहीं रोका जा सकता, बल्कि क्रान्तियों के माध्यम से साम्राज्यवादी होड़ को ध्वस्त करने बाद ही विश्व शान्ति स्थापित की जा सकती है।

महान बहस के दौरान माओ के नेतृत्व में चीनी पार्टी ने आगे चलकर हुई महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की पूर्वपीठिका तैयार की और सभी अनुभवों का सार-संकलन करते हुए मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सैद्धान्तिक विकास में एक ऐतिहासिक भूमिका निभायी। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति माओ के नेतृत्व में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा संचालित एक महान राजनीतिक-विचारधारात्मक क्रान्ति थी जिसमें व्यापक मेहनतकश जनता की भागीदारी का आह्वान करते हुए बहसों, आलोचना और राजनीतिक लामबन्दी के साथ वर्ग-संघर्ष को संचालित करने के लिए सर्वतोमुखी सर्वहारा अधिनायकत्व लागू करने का महान प्रयोग किया गया।

10 वर्ष तक चली सांस्कृतिक क्रान्ति में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में मेहनतकश जनता की अपार शक्ति की मदद से आर्थिक जगत, सामाजिक संस्थाओं, संस्कृति और मूल्यों के साथ-साथ कम्युनिस्ट पार्टी के रूपान्तरण का काम शुरू किया गया था। पूँजीवादी पथगामियों के विरुद्ध संघर्ष की शुरुआत करते हुए माओ ने व्यापक जनसमूह का आह्वान किया और 'बुर्जुआ हेडक्वार्टर को ध्वस्त करने' और समाज को वापस पूँजीवाद के चंगुल में धकेलने में लगे 'मुट्ठीभर पूँजीवादी पथगामियों को, उखाड़ फेंकने' का नारा दिया।

सांस्कृतिक क्रान्ति के तहत कलाकारों, डाक्टरों, तकनीशियनों, वैज्ञानिकों तथा सभी तरह के शिक्षित लोगों को मज़दूरों और किसानों के बीच जाने और क्रान्तिकारी आन्दोलनों में शामिल होने का आह्वान किया गया। समाज में मौजूद मानसिक श्रम और शारीरिक श्रम के बीच, शहर और देहात के बीच, उद्योग और कृषि के बीच और पुरुष और स्त्री के बीच अन्तर को समाप्त करने के लिए सामाजिक स्तर पर बहसों को प्रोत्साहित किया गया। नये समाजवादी मूल्यों का प्रसार करने और पूँजीवादी व्यक्तिवादी मान्यताओं के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए 'जनता की सेवा करो' और देहात की ओर चलो का नारा दिया गया और बड़ी संख्या में नौजवानों और विशेषज्ञों ने इस आह्वान का स्वागत किया। शिक्षा में आमूलगामी परिवर्तन किये गये, पहले शिक्षा और योग्यता को दूसरों से आगे रहने और दूसरों की तुलना में अधिक सुविधा और विशेषाधिकार प्राप्त करने का एक माध्यम माना जाता था, सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान शिक्षा और योग्यता को सामूहिक हितों के लिए लगाने को प्रोत्साहित किया गया। फैक्टरियों में एक व्यक्ति द्वारा प्रबन्धन को समाप्त कर दिया गया और उसकी जगह मज़दूरों, तकनीशियनों और कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों की तीन-पक्षीय समितियों ने दैनिक प्रबन्धन को अपने हाथ में ले लिया।

महान सर्वहारा क्रान्ति के दौरान व्यापक जनसमूह की भागीदारी को प्रोत्साहित करने तथा सही विचारों को परखने के लिए सार्वजनिक बहसें आयोजित की जाती थीं, जिससे पार्टी के लोगों और समाज में मौजूद पूँजीवादी विचारों को जनता के सामने लाकर उन पर चोट की जा सके। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान यह सिद्धान्त अपनाया कि सहयोगियो के साथ एकता को सुदृढ करो, ढुलमुल तत्वों को अपने पक्ष में लो, और विरोधी तत्वों को सार्वजनिक वाद-विवाद करते हुए जनता के सामने उजागर करो और अलगाव में डाल दो। सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान विचारधारात्मक संघर्ष के महत्व को रेखांकित करते हुए माओ ने बताया कि राजनीतिक सत्ता को उखाड़ फेंकने से पहले अनिवार्य रूप से इस बात की कोशिश की जाती है कि ऊपरी ढाँचे और विचारधारा पर अपना प्रभुत्व कायम कर लिया जाय, ताकि लोकमत तैयार किया जा सके, तथा यह बात क्रान्तिकारी वर्गों और प्रतिक्रियावादी वर्गों दोनों पर लागू होती है। इस आधार पर माओ ने आह्वान किया कि सर्वहारा तत्वों का पालन-पोषण करने के लिए, और पूँजीवादी तत्वों को नेस्तनाबूद कर देने के लिए विचारधारा के क्षेत्र में वर्ग-संघर्ष चलाएँ।

समाज के आर्थिक और वैचारिक रूपान्तरण के लिए व्यापक मेहनतकश जनता की राजनीतिक भागीदारी मानव इतिहास में इससे पहले कभी नहीं देखी गई थी। महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में आर्थिक सम्बन्धों, राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओं, और संस्कृति, आदतों तथा विचारों को बदलने में इतिहास का सबसे मौलिक प्रयोग किया गया। महान सर्वहारा क्रान्ति ने 10 साल (1966 से 1976) तक चीन में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना को रोके रखा और कई सामाजिक तथा संस्थागत बदलावों के साथ ष्जनता की सेवा करोष् के आधार पर समाज को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1976 में माओ की मृत्यु के बाद देङ-सियाओ-पिङ के नेतृत्व में संशोधनवादी तख्तापलट करके एक बार फिर सोवियत संघ के ख्रुश्चेवी संशोधनवाद के इतिहास को दोहराया गया और पूँजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए रास्ते खोल दिये गये। वर्तमान संशोधनवादी चीनी पार्टी चीन में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना को पूरी तरह से अंजाम दे चुकी है। चीन में संशोधनवादियों द्वारा तख्तापलट कर पूँजीवाद की पुनर्स्थापना के साथ सर्वहारा क्रान्तियों का पहला ऐतिहासिक चक्र पूरा हो चुका है। आज साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण का यह दौर पूरी दुनिया में विभिन्न रूपों में पूँजीवाद की सुरक्षा पंक्ति बनकर पूँजीपतियों और साम्राज्यवादियों की गोद में बैठे सभी संशोधनवादी गद्दारों और साम्राज्यवाद द्वारा पाले-पोसे जा रहे अनेक संशोधनवादी सिद्धान्तकारों के विरुद्ध वैचारिक संघर्ष की माँग कर रहा है ताकि आने वाले समय में सही विचारधारात्मक समझ के साथ क्रान्तियों का नया एक चक्र शुरू हो सके। सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान **माओ** ने कहा था कि पूँजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग तथा पूँजीवाद और समाजवाद में **"दो वर्गों और दो लाइनों के बीच संघर्ष एक, दो-तीन या चार सांस्कृतिक क्रान्तियों से तय नहीं हो पायेगा बल्कि वर्तमान महान सांस्कृतिक क्रान्ति के परिणामों को कम से कम पंद्रह वर्षों तक सुदृढ़ करना होगा। हर सौ साल में दो या तीन सांस्कृतिक क्रान्तियाँ पूरी करनी होगी। इसलिये हमें संशोधनवाद को उखाड़ फेंकने और किसी भी वक़्त संशोधनवाद का विरोध करने के लिए अपनी ताकत मजबूत करने के काम को याद रखना होगा।"**

– राजकुमार

प्रधानमन्त्री जन-धन योजना से मेहनतकशों को क्या मिलेगा?

(पेज 1 से आगे)

सूद वाले कर्ज़ों तले पिसकर तबाह हो जाते हैं। भारतीय पूँजीपति वर्ग के दूरन्देश विचारक और बुद्धिजीवी लम्बे अरसे से इस आबादी को मुख्यधारा की बैंकिंग प्रणाली से जोड़ने की बात करते रहे हैं ताकि उनकी थोड़ी-बहुत बचत जो अभी स्थानीय महाजन या माइक्रो फाइनेंस कम्पनियाँ हड़प लेती हैं उसे राष्ट्रीय पूँजीपति वर्ग की पूँजी की ज़रूरतों को पूरा करने में लगाया जाये।

मोदी सरकार जन-धन योजना को कुछ इस तरह से प्रचारित कर रही है मानो यह उनके दिमाग की उपज है। सच तो यह है कि वित्तीय समावेशन की क़वायदें कांग्रेस नीत यूपीए सरकार के जमाने से ही की जा रही हैं। इसी क़वायद के तहत अभी पिछले वित्तीय वर्ष में ही 6 करोड़ बैंक खाते खोले गये। लेकिन उनमें से अधिकांश खाते कुछ समय बाद निष्क्रिय पाये गये। ज़ाहिर है कि बैंक खाते खुलवाना अपने आपमें कोई जादू की छड़ी नहीं है जिससे ग़रीबों की समस्याएँ छूमन्तर हो जायेंगी। एक ऐसे दौर में जब महँगाई दिन-ब-दिन नयी ऊँचाइयों को छूती जा रही है, यह समझना मुश्किल नहीं है कि क्यों ये खाते निष्क्रिय हो जाते हैं। मोदी सरकार अन्य नीतियों की ही तरह यूपीए सरकार की इस नीति को भी बस लेबल बदलकर अपने नाम से प्रचारित कर रही है। जिस प्रकार एक कुशल सेल्समैन पुराने माल को ही नयी पैकेजिंग करके और उसके साथ कुछ डिसकाउंट आदि जोड़कर बेचता है, ठीक उसी प्रकार मोदी सरकार भी इस योजना पर नया लेबल चस्पां कर और इसके साथ कुछ नये प्रावधान मसलन बीमा कवर, ओवरड्राफ्ट, डेबिट कार्ड आदि की सुविधाएँ जोड़कर इसको नयी योजना की तरह प्रचारित कर रही है। इस योजना में बीमा और ओवरड्राफ्ट की जिन सुविधाओं का ज़ोर-शोर से प्रचार किया गया उनके बारे में स्पष्टता के अभाव में बैंकों एवं भारतीय जीवन बीमा निगम में उहापोह की स्थिति बनी हुई है कि इसका बोझ कौन उठायेगा।

मोदी ने इस योजना को लांच करते हुए कहा कि अब मेरे ग़रीब के पास भी डेबिट कार्ड होगा जो उसमें मानसिक परिवर्तन लायेगा। ग़रीबों की मोदी तक पहुँच नहीं है, नहीं तो वे उनसे ज़रूर पूछते कि डेबिट कार्ड होने मात्र से उनका क्या भला होने वाला है? शहरों में फैक्टरी में काम करने वाले बहुत से मज़दूरों के पास इन दिनों डेबिट कार्ड पाया जाता है, लेकिन इससे उनकी नारकीय जीवन परिस्थिति में तो कोई परिवर्तन नहीं आता। रही बात गाँवों की तो वहाँ जब अधिकांश समय बिजली ही नहीं रहती तो ऐसे में वहाँ के ग़रीबों को डेबिट कार्ड देने की हाँकना क्या एक भद्दा मज़ाक़ नहीं है?

जन-धन योजना के तहत गाँवों में नये खाते खुलवाने के लिए बैंकिंग करेस्पांडेंट मॉडल को लागू करने की बात की जा रही है जिसके तहत सुदूरवर्ती क्षेत्रों में बैंक अपनी शाखाएँ खोलने की बजाय खाता खोलने और उसके प्रबन्धन का काम कुछ निजी कम्पनियों को ठेके पर दे देते हैं जिन्हें बैंकिंग करेस्पांडेंट कहा जाता है। आन्ध्र प्रदेश, झारखण्ड और हरियाणा जैसे प्रदेशों में यह मॉडल पहले से काम कर रहा है। आन्ध्र प्रदेश में फिनो और मनीपाल जैसी निजी कम्पनियाँ बैंकिंग करेस्पांडेंट के काम में लगी हुई हैं। लेकिन हालिया रिपोर्टों में यह पता चला है कि ऐसी कम्पनियाँ इस काम को कराने के लिए बेहद कम तनख़्वाह (1000-1500 रुपये) पर लड़के-लड़कियों को ठेके पर रखते हैं जिन्हें कोई औपचारिक प्रशिक्षण भी नहीं प्रदान किया जाता है। लिहाजा ग़रीबों की समस्या घटने की बजाय बढ़ जाती है। एक हालिया सर्वे के मुताबिक़ पिछले कुछ वर्षों में देश भर में खुली बैंकिंग करेस्पांडेंट कम्पनियों में से लगभग आधी का कोई अता-पता ही नहीं है। जिनका अता-पता मिला उनमें से भी 16 फीसदी कम्पनियों ने हाल में कोई गतिविधि नहीं की। इसके अलावा कुछ बैंकिंग करेस्पांडेंट कम्पनियों पर फर्जीवाड़े के आरोप भी लगे हैं। ऐसे में यह मॉडल ग़रीबों के लिए खाते खुलवाने के सीमित लक्ष्य पर भी कितना खरा उतरेगा इस पर एक बहुत बड़ा प्रश्नचिन्ह लग जाता है।

मोदी सरकार द्वारा इस योजना को ज़ोर-शोर से लागू करने के पीछे एक अन्य अहम वजह यह भी है कि इसके ज़रिये खाद्य पदार्थों, ईंधन और फर्टिलाइज़र आदि की सब्सिडी को सीधे नक़दी देने की नव-उदारवादी परियोजना को भी लागू किया जा सकेगा। ग़ौरतलब है कि 'डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर' या 'डायरेक्ट कैश ट्रांसफर' की यह नव-उदारवादी योजना भी कांग्रेस नीत यूपीए सरकार की योजना को ही आगे बढ़ाती है। नव-उदारवादी अर्थशास्त्री और इस योजना के पैरोकार यह दावा करते हैं कि इससे सब्सिडी को बेहतर तरीके से निर्देशित किया जा सकेगा ताकि इसका लाभ ज़रूरतमन्दों को ही मिल सके। लेकिन इसका असली मक़सद सार्वजनिक वितरण प्रणाली को तहस-नहस करके हर क़िस्म की सब्सिडी को नक़दी में देना है ताकि ग़रीबों को दी जाने वाली सब्सिडी का बोझ कम किया जा सके।

ग़ौरतलब है कि नक़दी में सब्सिडी देने के जो प्रयोग अब तक हुए हैं उनमें यह साफ़ उभरकर आया है कि इससे ज़रूरतमन्दों की एक बड़ी आबादी सब्सिडी से वंचित हो जाती है। मसलन राजस्थान के अलवर जिले के कोटकासिम गाँव में किरासन वितरण में नक़दी सब्सिडी देने के प्रयोग में यह देखने में आया कि इस योजना को लागू करने के बाद ग़रीबों की एक बड़ी आबादी में किरासन की माँग में ही कमी आ गयी क्योंकि उनको सालों तक सब्सिडी का पैसा नहीं मिलता था। अपनी दिहाड़ी तोड़कर तमाम लोगों द्वारा बैंक शाखाओं तक मीलों चलके जाने के बावजूद उनको सब्सिडी का पैसा न मिलने से उनमें इस स्कीम पर से भरोसा ही उठ गया। इसी तरह दिल्ली में इसी तरह की एक स्कीम लागू होने के बाद किये गये सर्वे के बाद 95 फीसदी लोगों का मानना था कि नक़दी सब्सिडी देने की बजाय पहले की तरह राशन की दुकानों से चीज़ों के वितरण की व्यवस्था ही अपनी तमाम खामियों के बावजूद बेहतर थी। सार्वजनिक वितरण प्रणाली में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर करने की बजाय उसकी तिलांजलि देकर नक़दी सब्सिडी की बात करना नव-उदारवादी एजेंडा है जो विश्व बैंक, आईएमएफ, यूएनडीपी जैसी तमाम संस्थाओं द्वारा पूरी दुनिया में फैलाया जा रहा है। इस तरह की स्कीमों के पायलट प्रोजेक्टों में विफलता और जनअसन्तोष को पूरी तरह दरकिनार करते हुए अब मोदी सरकार इसे प्रधानमन्त्री जन-धन योजना के तहत तेज़ी से लागू करने की फ़िराक में है। पूँजीपतियों की विलासिता के लिए हर साल अरबों रुपये की कॉरपोरेट सब्सिडी झोंकने वाली पूँजीवादी सरकारों को ग़रीबों के मुँह में जाने वाला निवाला भी फूटी आँख नहीं सुहा रहा है और वे सब्सिडी में कटौती कर उसको भी नियंत्रित करने की योजनाएँ बना रहे हैं। इस प्रकार जन-धन योजना को ग़रीबों-मेहनतकशों के अधिकारों पर नव-उदारवादी हमलों की कड़ी में ही समझा जा सकता है।

– आनन्द सिंह

इस्लामिक स्टेट (आईएस): अमेरिकी साम्राज्यवाद का नया भस्मासुर

यदि बुर्जुआ मीडिया की मानें तो इन दिनों इस्लामिक स्टेट ऑफ़ इराक़ एंड सीरिया (आईएसआईएस जिसे अब आईएस कहा जाता है) नामक एक दैत्य इराक़ में यकायक पैदा हो गया है। यह इस्लामिक कट्टरपन्थी संगठन इराक़ में मध्ययुगीन बर्बर करतूतों को अंजाम दे रहा है। आईएस के जिहादी लड़ाके तेज़ी से एक के बाद एक इराक़ के कई मुख्य शहरों पर क़ब्ज़ा कर रहे हैं और अगस्त के महीने में वे इराक़ की राजधानी बग़दाद के प्रवेशद्वार तक आ पहुँचे थे। यही नहीं, इस संगठन के सरगना अबू बक्र अल-बग़दादी ने अपने आपको समूचे इस्लामिक जगत का ख़लीफ़ा तक घोषित कर दिया है। लेकिन बुर्जुआ मीडिया हमें यह नहीं बता रहा है कि अभी कुछ महीनों पहले तक आईएसआईएस के जेहादी लड़ाके अमेरिकी, ब्रिटिश, फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों एवं अरब जगत में उनके टट्टुओं जैसे सउदी अरब, कतर और कुवैत की शह पर सीरिया के राष्ट्रपति बशर अल-असद का तख़्तापलट करने के लिए वहाँ जारी गृहयुद्ध में भाग ले रहे थे। उस समय साम्राज्यवादियों की नज़र में वे "अच्छे" जिहादी थे क्योंकि वे उनके हितों के अनुकूल काम कर रहे थे। लेकिन अब जब वे उनके हाथों से निकलते दिख रहे हैं तो वे बुरे जिहादी हो गये हैं और उन पर नकेल कसने की क़वायदें शुरू हो गयी हैं। दरअसल इस्लामिक स्टेट अल-क़ायदा और तालिबान की तर्ज़ पर अमेरिकी साम्राज्यवाद द्वारा पैदा किया गया और पाला-पोसा गया नया भस्मासुर है जो अब अपने आका को ही शिकार बनाने लगा है।

इस्लामिक स्टेट (आईएस), जिसको आईएसआईएस के नाम से भी जाना जाता है, अल-क़ायदा का ही एक घटक है जिसने हाल ही में दजला और फ़रात नदियों के किनारे स्थित उत्तरी सीरिया एवं उत्तरी और मध्य इराक़ के अनेक महत्वपूर्ण शहरों, तेलशोधक कारख़ानों और बाँधों पर अपना क़ब्ज़ा जमा लिया है। इस लेख के लिखे जाने तक इराक़ के लगभग एक तिहाई क्षेत्र पर इसका क़ब्ज़ा हो चुका है। इस आतंकवादी संगठन ने इराक़ में 2003 के अमेरिकी हमले के बाद इराक़ में अपनी जड़ें जमानी शुरू कीं। ग़ौरतलब है कि इस हमले के पहले तक इराक़ में अल-क़ायदा का नामोनिशान तक नहीं था। अमेरिकी हमले में सद्दाम हुसैन के सत्ताच्युत होने के बाद इराक़ में घोर अराजकता, पन्थीय और नृजातीय संकीर्णता और इस्लामिक कट्टरपन्थियों के पनपने की ज़मीन तैयार हुई। साथ ही इराक़ में अमेरिकी क़ब्ज़े और सेना की उपस्थिति के ख़िलाफ़ व्यापक जनउभार भी देखने में आया। इस जनउभार को काबू में करने के लिए अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने योजनाबद्ध तरीके से इराक़ी समाज में शिया-सुन्नी की पन्थीय संकीर्णता एवं उत्तरी इराक़ में रहने वाली कुर्द नृजातीय आबादी में अलगाववादी भावनाओं को हवा देना शुरू किया। 'बाँटो और राज करो' की इस साम्राज्यवादी नीति का नतीजा यह हुआ कि इराक़ में गृहयुद्ध जैसी स्थिति उत्पन्न हो गयी। शियाओं एवं सुन्नियों की अलग-अलग मिलीशिया और फ़िदायीन दस्ते बनने लगे जो एक दूसरे के खून के प्यासे हो गये।

अमेरिकी हमले के बाद इराक़ में जो राजनीतिक संरचना अस्तित्व में आयी उसमें संवैधानिक रूप से यह प्रावधान किया गया कि वहाँ के सबसे रसूख़दार ओहदे यानी प्रधानमन्त्री के पद पर शिया ही बैठ सकता है एवं राष्ट्रपति व संसद के स्पीकर जैसे कम महत्वपूर्ण पद क्रमशः सुन्नियों तथा कुर्दों के लिए सुरक्षित रखे गये। लेबनान के मॉडल पर किये गये इस विचित्र संवैधानिक-राजनीतिक प्रबन्ध का नतीजा यह हुआ कि समय बीतने के साथ ही वहाँ की राजनीति एवं अर्थव्यवस्था में शियाओं का दबदबा बढ़ता गया और सुन्नी एवं कुर्द हाशिये पर जाते गये। इसकी वजह से सुन्नियों एवं कुर्दों में अलगाववादी भावना पनपने लगी। अमेरिकी हमले के बाद इराक़ की अर्थव्यवस्था तहस-नहस हो गयी, बेरोज़गारी और महँगाई आसमान छूने लगी। हालाँकि इस घोर अराजकता के नतीजे इराक़ की जनता के हर हिस्से ने झेले, लेकिन सुन्नी जो सद्दाम हुसैन के शासनकाल में बेहतर स्थिति में थे, उनकी तो मानो पूरी दुनिया ही उजड़ गयी।

ये वो हालात थे जिनमें सुन्नी इस्लामिक कट्टरपन्थी अल-कायदा ने इराक़ में पैर जमाना शुरू किया। इसका शुरुआती नाम 'अल-कायदा इन मेसोपोटामिया' था जिसकी स्थापना इराक़ के ताल अफ़ार नामक शहर में हुई थी। यही संगठन 2006 में इस्लामिक स्टेट आफ इराक़ (आईएसआई) के नाम से जाना जाने लगा जो बाद में आईएसआईएस या सिर्फ़ आईएस के नाम से प्रचलित हुआ। इस संगठन ने मुक़्तदा अल-सद्र की महदी शिया सेना और बद्र एवं सलाम ब्रिगेड जैसी शिया मिलीशिया से भी लोहा लिया था। लेकिन यह अभी भी एक छोटा सा जिहादी समूह भर था जिसके पास इतनी ताक़त हरगिज़ नहीं थी कि वह इराक़ के किसी शहर पर क़ब्ज़ा करने की सोच भी सके। आईएसआईएस की ताक़त बढ़नी तब शुरू हुई जब 2011 के बाद से सीरिया में जारी गृहयुद्ध में इसने विद्रोहियों की तरफ़ से शिरकत करनी शुरू की।

2011 में ट्यूनिशिया और मिस्र में जनविद्रोहों की बदौलत वहाँ के तानाशाहों की सत्ता के पतन के बाद अरब के तमाम देशों की तरह सीरिया में भी निरंकुश शासन एवं आर्थिक संकट के विरोध में व्यापक जनउभार देखने को आया। अमेरिकी एवं पश्चिमी यूरोपीय साम्राज्यवादियों को इस जनउभार में सीरिया के राष्ट्रपति बशर अल-असद (जिसकी क़रीबी रूस और इरान से है) का तख़्तापलट करने की सम्भावना दिखी। असद सरकार के ख़िलाफ़ जिहाद का एलान करने वाले लड़ाकों को मुद्रा, हथियार एवं सैन्य प्रशिक्षण देने के काम में उनकी मदद सउदी अरब, कतर एवं कुवैत के शेख़ों और शाहों के साथ ही साथ तुर्की की सरकार ने की। आईएस के अतिरिक्त सीरिया में जिहाद का एलान करने वाले लड़ाकों में एक अन्य इस्लामिक कट्टरपन्थी संगठन जबत अल-नूसरा भी है जिसको अल-कायदा की सीरिया शाखा कहा जाता है।

लेकिन बशर अल-असद की सरकार लीबिया की क़द्दाफ़ी की सरकार जितनी कमज़ोर न थी, उसकी सैन्य क्षमता एवं सामाजिक आधार कहीं ज़्यादा व्यापक थे। नतीजतन साम्राज्यवादियों को सीरिया में बशर अल-असद का तख़्तापलट करने में अभी तक कोई क़ामयाबी नहीं हासिल हुई है। लेकिन इस प्रक्रिया में आईएस जैसे ख़ूँख़ार जेहादी लड़ाकों को अकूत धनसामग्री एवं अत्याधुनिक हथियार (ख़ासकर टोयोटा ट्रक और हॉवित्ज़र बन्दूकें) ज़रूर मिल गये जिससे उनकी ताक़त में जबर्दस्त इज़ाफ़ा हुआ।

पिछले साल के अन्त में आईएसआईएस ने सीरिया-इराक़ की सीमा को पार कर इराक़ में एक बार फिर से नयी ताकत के साथ प्रवेश किया। इस साल जनवरी में उसने इराक़ के अनबार प्रदेश के रमादी एवं फलूजा शहरों पर क़ब्ज़ा कर लिया। जून में उसने समारा, मोसुल, निनेवेह एवं सद्दाम हुसैन के गृह नगर तिकरित पर क़ब्ज़ा कर लिया। जून के अन्त तक इराक़ की सीरिया एवं जार्डन की सीमा पर आईएस का क़ब्ज़ा हो चुका था और उसके जिहादी लड़ाके बग़दाद के प्रवेशद्वार तक पहुँच चुके थे।

सीरिया के गृहयुद्ध के दौरान प्राप्त मुद्रा, हथियारों एवं सैन्य प्रशिक्षण के अतिरिक्त आईएस की बढ़ती ताकत का एक अन्य प्रमुख कारण सद्दाम हुसैन की बाथ पार्टी से जुड़े सेना के सुन्नी जनरलों एवं सुन्नी नौकरशाहों के साथ उनका गठबंधन रहा। ग़ौरतलब है कि 2003 के अमेरिकी हमले के बाद से अमेरिका के निर्देश पर सुनियोजित रूप से वहाँ बाथ पार्टी का असर ख़त्म करने की मुहिम चलायी गयी जिसकी वजह से बाथ पार्टी से जुड़े सैना के अधिकारी और नौकरशाह बेरोज़गार होकर वस्तुतः सड़क पर आ गये। इन सुन्नी सैन्य अधिकारियों ने 'मिलिटरी काउंसिल' नाम से संगठन बनाया जो इस वक़्त आईएस के लड़ाकों का रणनीतिक मार्गदर्शन कर रहा है। आईएस के दूसरे सहयोगी नक्शबन्दी आन्दोलन से जुड़े लड़ाके हैं जिनका नेतृत्व सद्दाम हुसैन की सरकार में उपराष्ट्रपति एवं पूर्व बाथ पार्टी का सदस्य इज्ज़त अल-दौरी कर रहा है। हालाँकि नक्शबन्दी आन्दोलन इस्लाम की सूफ़ी परम्परा से प्रेरित है, लेकिन उसने आईएस जैसे कट्टरपन्थी संगठन से अवसरवादी गठजोड़ बना लिया है जिससे आईएस की ताकत में जबर्दस्त इज़ाफ़ा हुआ है।

आईएस की गुरिल्ला फौज में इराक़ और अरब जगत के इस्लामिक कट्टरपन्थियों के अतिरिक्त चेचेन्या, पाकिस्तान एवं यूरोपीय देशों एवं अमेरिका के इस्लामिक कट्टरपन्थी लड़ाके हैं। भारत से भी कुछ मुस्लिम युवाओं के आईएस में शामिल होने की ख़बरें आयी हैं। इराक़ में आईएस का प्रभुत्व इतनी तेज़ी से बढ़ने के पीछे एक अन्य कारण अमेरिकी हमले के बाद से इराकी सेना के मनोबल में भारी गिरावट भी रहा जिसकी वजह से वे आईएस से लड़ने में फिसड्डी साबित हुए। आईएस ने जिन शहरों पर क़ब्ज़ा किया वहाँ भारी मात्रा में इराकी सेना के हथियारों और लूटपाट से अर्जित अकूत धनदौलत से भी आईएस की ताकत में इज़ाफ़ा हुआ। इसके अतिरिक्त मोसुल और किरकुक जैसे स्थानों में स्थित तेलों के कुओं पर कब्ज़े से भी उनकी आर्थिक ताकत बढ़ी। लेकिन जितनी तेज़ी से इसकी ताकत बढ़ी उतनी ही तेज़ी से अरब जगत की आम जनता के बीच इसके प्रतिक्रियावादी चरित्र का खुलासा भी हुआ। जब यह इराक़ में एक के बाद एक शहरों पर क़ब्ज़ा करने में व्यस्त था था उसी दौरान ज़ायनवादी इज़रायल गाज़ा की जनता पर अकथनीय क़हर बरपा रहा था। लेकिन पूरी दुनिया में इस्लामिक राज्य स्थापित करने का दावा करने वाले इस आतंकवादी संगठन के पास फलस्तीन की जनता के बहादुराना संघर्ष में भाग लेना तो दूर उनके समर्थन में ये एक शब्द तक नहीं बोले।

अगस्त के महीने में आईएस के लड़ाके उत्तरी इराक़ के कुर्दिस्तान क्षेत्र की ओर तेज़ी से बढ़ने लगे। कुर्दिस्तान इराक़ के तेल संसाधन सम्पन्न क्षेत्रों में से एक है जहाँ एक्सान मोबिल और शेवरान जैसी अमेरिकी तेल कम्पनियाँ तेल के कुओं से तेल निकालकर अकूत मुनाफ़ा कमाती हैं। कुर्दिस्तान की राजधानी इरबिल में इन तमाम तेल कंपनियों के क्षेत्रीय कार्यालय हैं। अमेरिका का दूतावास भी इरबिल में स्थित है और इसके अलावा अमेरिका के सैन्य और ख़ुफ़िया अधिकारियों का गढ़ भी है। इरबिल में आईएस के क़ब्ज़े की सम्भावना से अमेरिका सकते में आ गया। आनन-फानन में अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने, जो अब तक आईएस को एक छोटा-मोटा संगठन बताते थे, कुर्दिस्तान में आईएस के क़ब्ज़े वाले क्षेत्रों में अमेरिकी वायुसेना को हवाई हमले का आदेश दे दिया। दुनिया भर के पूँजीवादी मीडिया में यह प्रचारित किया गया कि अमेरिका ने आईएस के डर से सिंजर पहाड़ियों में छिपे यज़ीदी समुदाय के लोगों को बचाने के लिए यह हमला किया था। लेकिन सच्चाई यह थी कि यह हमला आईएस को इरबिल से दूर हटाने के लिए किया गया था। इस हमले की दूसरा मक़सद मोसुल बाँध पर से आईएस के कब्ज़े से छुड़ाना था जिससे इराक़ के बड़े हिस्से में बिजली और पानी भेजा जाता है। यज़ीदी समुदाय के लोगों को बचाने का काम दरअसल सीरिया स्थित कुर्दिश लड़ाके वाईपीजी (कुर्दिश प्रोटेक्शन आर्मी) और तुर्की की पीकेके (कुर्दिश वर्कर्स पार्टी) के ज़मीनी लड़ाकों ने किया था। यज़ीदियों को बचाने में पीकेके की भूमिका बुर्जुआ मीडिया में ज़्यादा नहीं आयी क्योंकि अमेरिका ने पीकेके को आतंकवादी संगठन घोषित किया है। कुर्दिस्तान के पेशमेर्गा लड़ाके आईएस का अकेले सामना कर पाने में विफल रहे। अब अमेरिका और यूरोपीय देश पेशमेर्गा को और आधुनिक हथियारों की सप्लाई की बात कर रहे हैं।

अगस्त के अन्त में आईएस ने बगदाद, किरकुक और इरबिल जैसे इराक़ के प्रमुख शहरों पर एक साथ बमबारी शुरू कर दी जिसमें सैकड़ों लोग मारे गये। इसके अलावा दो अमेरिकी पत्रकारों जैकब फोली और स्टीवेन सॉटलॉफ को आईएस ने गला काटकर हत्या कर दी और इस बर्बर कृत्य का वीडियो सोशल मीडिया पर अपलोड कर दिया जिसके बाद से अमेरिका की घरेलू राजनीति में इराक़ में पुनः सेना भेजने और सैन्य कार्रवाई की माँग और तेज़ हो गयी है। इसके पहले ओबामा सरकार ने इराक़ के प्रधानमन्त्री नूरी अल-मलिकी को बलि का बकरा बनाते हुए उसकी जगह हैदर अल-अबादी को प्रधानमन्त्री बनाया। अमेरिका को यह उम्मीद है कि पश्चिम में शिक्षित होने की वजह से अल-अबादी अमेरिका के हाथों की कठपुतली का काम अल-मलिकी से बेहतर ढंग से कर पायेगा। ग़ौरतलब है कि अल-अबादी को ईरान का भी समर्थन प्राप्त है। चूँकि ईरान की सीमा के काफ़ी निकट तक आईएस का क़ब्ज़ा हो चुका है इसलिए ईरान भी आईएस को एक बड़े ख़तरे के रूप में देख रहा है। इसी तरह सीरिया ने भी आईएस के प्रभाव को कम करने के लिए अपने क्षेत्र को अमेरिकी हवाई बमबारी के लिए अनुमति देने के संकेत दे दिये हैं। 11 सितंबर के आतंकवादी हमले की 13 वीं बरसी पर ओबामा ने सीरिया में आईएस के ठिकानों पर हवाई बमबारी एवं इराक़ में 500 अतिरिक्त सैन्य सलाहकारों को भेजने की घोषणा की। साथ ही सीरियाई विद्रोहियों के नरमपन्थी हिस्सों को हथियारों की सप्लाई एवं सैन्य प्रशिक्षण की योजना का भी खुलासा किया गया।

पिछले चन्द महीनों में मध्य-पूर्व की राजनीति में तेज़ी से हुए इन बदलावों से यह स्पष्ट हो गया है कि अमेरिकी साम्राज्यवादी अपने ही बनाये तिलिस्म में ज़्यादा से ज़्यादा फँसते जा रहे हैं। अमेरिका में विपक्षी रिपब्लिकन पार्टी ओबामा पर इराक़ में एक बार फिर से सेना भेजने के लिए दबाव बना रही है। सीरिया में असद सरकार का तख़्ता-पलट करने की योजना टालकर अब आईएस के ख़तरे को निपटाना अमेरिकी विदेशी नीति की प्राथमिकता बन गयी है। सीरिया और ईरान के साथ ही साथ तुर्की की सरकार एवं अरब के शेख और शाहों की सत्तायें भी आईएस की बढ़ती ताक़त से सकते में आ गये हैं और पारस्परिक सहयोग की बातें सुनने में आ रही हैं। हालाँकि इनमें आपस में जबर्दस्त अन्तर्विरोध हैं। तुर्की, सीरिया और इरान को डर है कि अमेरिका द्वारा इराक़ में कुर्दिस्तान की स्वतन्त्रता देने से इन देशों में रहने वाले कुर्द भी स्वतन्त्रता की माँग उठाने लगेंगे। ग़ौरतलब है कि इराक़ में लगभग 50 लाख कुर्द रहते हैं जबकि तुर्की में लगभग 2 करोड़ कुर्द रहते हैं। इसी तरह सीरिया और ईरान में भी अच्छी-ख़ासी संख्या में कुर्द रहते हैं। अमेरिका ने भले ही इराक़ में प्रधानमन्त्री बदल दिया है, लेकिन नये प्रधानमन्त्री अल-अबादी की नज़दीकी ईरान से भी है और साथ ही साथ इराक़ के बद्र और सलाम ब्रिगेड जैसे शिया मिलीशियाओं पर भी ईरान का ही नियन्त्रण है। सउदी अरब और तुर्की हालाँकि अल-बगदादी के ख़लीफ़ा बनने की घोषणा करने के बाद से आईएस पर नकेल कसने के पक्षधर हैं लेकिन उन्हें यह भी डर है कि इस प्रक्रिया में ईरान, इराक़ और सीरिया में शियाओं की ताक़त और ज़्यादा बढ़ जायेगी। इस जटिल परिस्थिति में इतना तो तय है कि निकट भविष्य में यह पूरा क्षेत्र भयंकर पन्थीय हिंसा और गृहयुद्धों की चपेट में रहेगा। लेकिन इसी प्रक्रिया में साम्राज्यवादी और उनके पिट्ठू निरंकुश अरब शासक भी वहाँ की जनता की निगाहों में ज़्यादा से ज़्यादा नंगे होते जायेंगे। गाज़ा में इज़रायली हमले के दौरान उनके रुख़ से पहले ही समूचे अरब क्षेत्र की जनता में वहाँ के शासकों के प्रति भारी असन्तोष दिखा। यह जनअसन्तोष निश्चय ही भविष्य में व्यापक जनविद्रोहों की शक़्ल अख़्तियार करेगा।

– आनन्द सिंह

नरेन्द्र मोदी की रणनीति क्या है?

(पेज 1 से आगे)

का पंजीकरण मुश्किल हो जाये। मोदी ने इन सभी माँगों को पूरा करते हुए कारख़ाना अधिनियम, औद्योगिक विवाद अधिनियम, ठेका मज़दूर क़ानून, ट्रेड यूनियन क़ानून आदि में बदलाव करने का प्रस्ताव पेश कर दिया है और अब वह समय ज़्यादा दूर नहीं जब ये क़ानून बदल दिये जायेंगे।

मोदी सरकार का ऐसा करना लाज़िमी था। मोदी के प्रचार में देश-विदेश के पूँजीपति वर्ग ने यूँ ही हज़ारों करोड़ रुपये थोड़े ही बहाये थे। मोदी की लहर बनाने का काम सबसे ज़्यादा मीडिया और प्रचार जगत ने किया। जिस देश में आम मेहनतकश आबादी के बीच राजनीतिक चेतना की कमी हो, उस देश में यदि एक झूठ को भी लोगों के कानों में दिनों-रात मन्त्र की तरह फूँका जाये तो लोग उसे सच मानने लगते हैं। मोदी के प्रचार में ठीक ऐसा ही किया गया। देश के बड़े-बड़े पूँजीपतियों के समाचार चैनल, उनकी प्रचार कम्पनियाँ, रेडियो चैनल आदि मोदी के प्रचार में जुट गये थे। दिन-रात महँगाई और बेरोज़गारी से त्रस्त जनता के कानों में यह दुहराया जा रहा था कि मोदी सरकार आते ही सभी समस्याओं का झटके में समाधान कर देगी। लोगों को बताया जा रहा था कि उन्हें महँगाई, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार, अपराध, भूख और कुपोषण से मोदी चुटकियों में राहत दे देंगे। मीडिया ने हज़ारों करोड़ रुपये पानी की तरह बहाकर मोदी की छवि एक जादूगर की बनायी जो छड़ी घुमाते ही सारी समस्याओं का समाधान कर देगा। गुजरात मॉडल की एक झूठी तस्वीर पेश की गयी और उसकी सच्चाई को छिपाया गया। लोगों को यह नहीं बताया गया कि गुजरात मज़दूरों के लिए एक यातना गृह है जहाँ श्रम विभाग को लगभग समाप्त कर दिया गया है; जहाँ ग़रीबों और अमीरों के बीच की खाई देश के अन्य कई राज्यों के मुकाबले कहीं ज़्यादा है; यह नहीं बताया गया कि गुजरात में भुखमरी और कुपोषण की स्थिति भयंकर है; केवल उस गुजरात की तस्वीर पेश की गयी जिसमें व्यापारी, उद्योगपति और खाता-पीता मध्यवर्ग बसता है, जो कि वास्तव में गुजरात के मेहनतकशों के ख़ून को निचोड़-निचोड़कर अपने ऐशो-आराम की ज़िन्दगी बसर कर रहा है। कुल मिलाकर, मोदी सरकार बनाने के लिए देश के पूँजीपतियों ने अपनी पूरी ताक़त झोंक दी और झूठ बनाने की मशीनरी को दिनों-रात पूरे ज़ोर-शोर से चलाया। अब मोदी सरकार अगर इन्हीं पूँजीपतियों की तिजोरियाँ भरने के रास्ते के सारे काँटे हटा रही है, तो इसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं है।

मोदी सरकार की दूसरी चाल : जनता को बेवकूफ़ बनाने के लिए खोखला प्रतीकवाद

लेकिन पिछले 100 दिनों में देश का मज़दूर और निम्नमध्यवर्गीय मेहनतकश यह समझने लगा है कि मोदी के वायदे झूठ के पुलिन्दे थे। मोदी के "अच्छे दिनों" का मतलब पूँजीपतियों और अमीरों के अच्छे दिनों से था। मज़दूरों और मेहनतकशों के लिए तो मोदी सरकार काले दिन लेकर आयी है। जैसे-जैसे यह अहसास आम मेहनतकश जनता के बीच गहरा हो रहा है, वैसे-वैसे 'मोदी लहर' सुनामी से नाले की लहर में तब्दील होती जा रही है। हाल ही में, उत्तराखण्ड, कर्नाटक, बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात आदि में हुए उपचुनावों में भाजपा और उसके सहयोगी दलों की हार इस बात का संकेत दे रही है कि 'मोदी लहर' उतार पर है और देश की जनता 100 दिनों के भीतर ही मोदी की असलियत को पहचानना शुरू कर रही है। लेकिन अभी भी देश की मेहनतकश जनता के कई हिस्सों में मोदी के झूठे प्रचारों का असर है। इस वक़्त भी मीडिया मोदी की गिरती इज़्ज़त को बचाने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक किये हुए है, और प्रति दिन नये-नये झूठों को गढ़ रहा है और मोदी की लहर को फिर से उठाने के लिए नयी-नयी किस्म की नौटंकियाँ और प्रतीक रच रहा है। लेकिन इन सबके बावजूद ज़िन्दगी की कड़वी सच्चाइयाँ देश की आम जनता को मोदी सरकार के चरित्र से परिचित करा रही हैं। मीडिया और संघ परिवार के पूरे नेटवर्क के ज़रिये मोदी सरकार जनता के बीच अपनी गिरती स्वीकार्यता (बर्दाश्त करने की ताक़त पढ़ें!) को बचाने के लिए तरह-तरह के प्रतीकों और नौटंकियों का इस्तेमाल कर रही है। यही मोदी सरकार की दूसरी अहम रणनीति है। मिसाल के तौर पर, मोदी सरकार ने जिस समय रेलवे का किराया बढ़ाया उसी समय उसने कुछ तीर्थ स्थलों के लिए विशेष ट्रेनें भी चला दीं। मोदी सरकार ने मीडिया के द्वारा अपनी यह छवि बनायी कि पिछली मनमोहन सरकार के विपरीत यह सरकार हर मुद्दे पर त्वरित क़दम उठाती है। मिसाल के तौर पर, मोदी सरकार ने विदेश नीति के मोर्चे पर मीडिया द्वारा अपनी ऐसी छवि बनायी कि अब भारत भी अन्य देशों के सामने सिर उठाकर खड़ा होने लगा है! हालाँकि, वास्तव में ऐसी कोई बात नहीं थी। हालिया जापान दौरे पर मोदी सरकार के इस प्रतीक का फालूदा बन गया! मोदी जापानी शासक वर्ग के सामने साष्टांग दण्डवत हो गये और जापानी कम्पनियों के लिए निवेश की अनुकूल स्थितियाँ बनाने (जिसका अर्थ है हर प्रकार के मज़दूर प्रतिरोध को कुचल डालना और लूट की पूरी छूट!) का वायदा किया। उन्होंने जापानी कम्पनियों के लिए विशेष तौर पर एक सरकारी ग्रुप बनाने का वायदा किया जिसमें कि जापानी प्रतिनिधि भी शामिल किये जायेंगे! बहरहाल, जापान से लौटते ही मोदी सरकार ने शिक्षक दिवस पर बच्चों को सम्बोधित करने की नौटंकी की; हालाँकि, यह नौटंकी ज़्यादा कामयाब नहीं हुई और इसका मज़ाक़ ही बना।

इसके अलावा मोदी सरकार ने एक जनधन योजना लागू की है। सभी जानते हैं कि वास्तव में इसका कोई लाभ आम ग़रीब आबादी को नहीं मिलना है। इस योजना के तहत 7.5 करोड़ लोगों का 1 लाख रुपये का बीमा होगा और उनका बैंक खाता खोला जायेगा। लेकिन अभी से अर्थशास्त्रियों ने बता दिया है कि इस योजना का ग़रीब आबादी पर उल्टा असर पड़ेगा क्योंकि देश की 40 फ़ीसदी आबादी के पास इन खातों में डालने के लिए कुछ भी नहीं होगा और उन 7.5 करोड़ लोगों में तो बिरले के पास ही जमा करने के लिए कुछ होगा! ऐसे में, ये बैंक खाते सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के ऊपर एक बोझ बन जायेंगे; इनसे होने वाला घाटा अन्त में सरकार अप्रत्यक्ष कर बढ़ाकर भरेगी। यानी कि अन्त में इन खातों से आम मेहनतकश ग़रीब आबादी को लॉलीपॉप से ज़्यादा कुछ मिलेगा नहीं और इनमें डाली जाने वाली मामूली रकम को अन्त में ब्याज़ समेत अप्रत्यक्ष कर देने वाली आम आबादी की जेब से वसूल लिया जायेगा! यानी, देश के वित्तीय पूँजीपति वर्ग के लिए आम के आम और गुठलियों के दाम! मोदी सरकार का यह क़दम वास्तव में देश की ग़रीब आबादी के ख़िलाफ़ है, हालाँकि अपनी गिरती लोकप्रियता को बचाने के लिए मोदी सरकार इस योजना का गला फाड़-फाड़कर प्रचार कर रही है और इसे "वित्तीय अस्पृश्यता" ख़त्म करने का क़दम बता रही है।

इसके अलावा, मोदी धार्मिक प्रतीकवाद का जमकर इस्तेमाल कर रहे हैं। आये दिनों मोदी किसी न किसी देवता या भगवान का आशीर्वाद लेने मन्दिर की शरण में पहुँच जाते हैं। चाहे भारत हो, नेपाल हो या फिर जापान; चाहे हिन्दू धर्म हो, जैन धर्म हो या बौद्ध धर्म (बस इस्लाम या मुसलमानों से वह दूर रहता है, क्योंकि यह उसकी हिन्दुत्ववादी फासीवादी नीतियों के लिए नुक़सानदेह होगा), मोदी हर जगह पूजा की थाली और घण्टी लेकर मौजूद रहता है। वास्तव में, पूजा करना या न करना तो व्यक्तिगत और निजी मसला होता है। अगर मोदी को तमाम जगहों के देवी-देवताओं का चरण धोकर पीना है, तो यह काम वह मीडिया पर शोर मचाये बिना भी कर सकता है। लेकिन मोदी को सोचे-समझे तौर पर 'शिव-भक्त', 'गंगा-भक्त' आदि के तौर पर पेश किया जा रहा है; मानो, मोदी कोई समर्पित संन्यासी हो जो कि देश सेवा में लग गया है! इस सबके पीछे वास्तव में संघ परिवार और मोदी की यह सोच है कि आर्थिक नीतियों के चलते तो मोदी की सरकार लगातार अधिक से अधिक अलोकप्रिय ही होगी, इसलिए जनता की धार्मिक भावनाओं का इस्तेमाल करके किसी तरह से लोकप्रियता गिरने की रफ़्तार को रोका जाये!

इसी प्रकार के प्रतीकवाद से मोदी सरकार अपने पूँजीपरस्त चरित्र को दृष्टिओझल करना चाहती है। लेकिन अब वह समय आ रहा है, जब यह खोखला प्रतीकवाद भी धीरे-धीरे अपना असर खो रहा है। मोदी सरकार बनने के तुरन्त बाद इस प्रतीकवाद का काफ़ी असर पड़ रहा था। लेकिन जनता के कम-से-कम कुछ हिस्सों में यह समझदारी अब बनने लगी है कि मोदी की यह सारी धार्मिकता, वित्तीय समावेशन की बातें और संन्यास भाव वास्तव में अपने असली चरित्र को छिपाने के लिए है, यानी कि पूँजीपतियों के वफ़ादार चौकीदार का चरित्र! हम मज़दूरों को भी यह सच्चाई जल्द से जल्द समझ लेनी चाहिए। हम जितनी जल्दी इस बात को समझेंगे, हमारे लिए उतना ही बेहतर होगा।

मोदी सरकार की तीसरी चाल : जनता को धर्म के नाम पर बाँटना

ऐसे में, मोदी सरकार और पूरा का पूरा संघ परिवार (जिसमें भाजपा, विहिप, बजरंग दल, सेवा भारती जैसे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अनुषंगी संगठन हैं) जनता के बीच तरह-तरह के बँटवारे पैदा करने की कोशिश कर रहा है। आरएसएस (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ) को पता है कि मोदी सरकार को जो आर्थिक नीतियाँ लागू करनी हैं, उनके चलते मोदी सरकार का अलोकप्रिय होना तय है। मोदी की सरकार के विरुद्ध जनअसन्तोष कालान्तर में आन्दोलनों का रूप लेगा। मोदी सरकार के शुरुआती क़दमों के ख़िलाफ़ ही मज़दूरों ने देशभर में अपने असन्तोष को व्यक्त करना शुरू कर दिया है। ऐसे में, जहाँ मोदी सरकार मज़दूरों और आम जनता के दमन की मशीनरी को चाक-चौबन्द कर रही है, वहीं जनता की वर्ग एकजुटता को न बनने देने और उसे तोड़ने के लिए तमाम क़दम उठा रही है।

वास्तव में, मोदी के सत्ता में आने के लिए अगर कोई एक कारण सबसे ज़्यादा ज़िम्मेदार था तो वह था उत्तर प्रदेश और बिहार में भाजपा की सीटों में हुई ज़बरदस्त बढ़ोत्तरी। लोकसभा चुनावों के पहले जब अमित शाह को उत्तर प्रदेश का चुनाव प्रभारी बनाया गया था, तभी उत्तर प्रदेश में संघ परिवार के मंसूबे साफ़ हो गये थे। कुछ ही समय बाद मुज़फ़्फ़रनगर क्षेत्र में अफ़वाहों के सहारे दंगों की शुरुआत की गयी और फिर कुछ ही समय में पूरे पश्चिमी उत्तर प्रदेश में साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण शुरू हो गया। जिस क्षेत्र में निकट अतीत में दंगों का कोई इतिहास ही नहीं रहा था और हिन्दू और मुसलमान मिलकर रहते रहे थे, वहाँ पर वे एक-दूसरे के ख़ून के प्यासे हो गये। दंगों में दर्जनों लोग मारे गये और हज़ारों लोग विस्थापित हो गये जो कि आज भी शरणार्थी शिविरों में रह रहे हैं। चुनाव के पहले से ही योगी आदित्यनाथ भी पूर्वी उत्तर प्रदेश में इस काम को अंजाम दे रहे थे। इन फासीवादियों की घृणित चालों के कारण जनता के बीच साम्प्रदायिक तौर पर बँटवारा हुआ और चुनावों में वोटों का भी साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण हुआ। इसी के नतीजे के तौर पर उत्तर प्रदेश और बिहार में भाजपा को भारी फायदा हुआ। अभी हाल ही में अमित शाह ने ग़लती से बोल भी दिया कि अगर देश में साम्प्रदायिक तनाव का माहौल बना रहता है तो भाजपा को आने वाले विधानसभा चुनावों में भी फायदा मिलेगा। दंगों को पैदा करने में माहिर फासीवादी गुर्गे की जुबान फिसल ही गयी!

बहरहाल, चुनावों के बाद भी मोदी सरकार की जो छीछालेदर जनता के बीच हो रही है, उसे रोकने के लिए एक बार फिर से अमित शाह और योगी आदित्यनाथ जैसे फासीवादी गुण्डों को यह जिम्मा सौंपा गया कि देश भर में अफवाहों का बाज़ार गर्म करके साम्प्रदायिक तनाव को भड़काया जाये, छोटे-छोटे कई दंगे करवाये जायें (क्योंकि गुजरात जैसे किसी नरसंहार से तो अब मोदी सरकार को नुक़सान होगा), नियन्त्रित तरीके से साम्प्रदायिक माहौल को ख़राब किया जाये। इस नियन्त्रित साम्प्रदायिकता के बूते देश में फासीवादियों ने तनाव का माहौल बनाये रखने की योजना बनायी है। इसी योजना के तहत देश के तमाम हिस्सों में, उत्तर प्रदेश से लेकर बिहार और झारखण्ड, उड़ीसा से लेकर महाराष्ट्र तक ये फासीवादी 'लव जिहाद' का हल्ला मचा रहे हैं। जितने भी ऐसे मामलों का दावा किया गया है, उनकी जाँच से पता चला है कि 'लव जिहाद' जैसी कोई चीज़ नहीं है। संघी गुण्डे मज़दूरों और निम्न मध्यवर्ग और गाँवों में कुलकों और खाते-पीते किसानों के अलावा मँझोले और छोटे किसानों की चेतना की कमी का फ़ायदा उठाते हुए उनमें भी 'लव जिहाद' का नकली डर भर रहे हैं; ये फासीवादी हम मज़दूरों के बीच भी यह प्रचार कर रहे हैं कि मुसलमान युवक शुरू में हिन्दू बनकर, हाथों में कलावा बाँधकर हिन्दू लड़कियों को अपने प्रेमजाल में फँसा रहे हैं और फिर उन्हें मुसलमान बच्चों की माँ बना रहे हैं! वास्तव में, इस घृणित प्रचार के पीछे कोई सच्चाई नहीं है। इस 'लव जिहाद' के नाम पर संघ गिरोह देश भर में मुसलमानों के विरुद्ध माहौल तैयार कर रहा है। एक झूठ को सौ बार दुहरा कर 'सच' बनाने की ही पद्धति पर हिटलर की जारज सन्तानें काम कर रही हैं। हम मज़दूरों को इसकी असलियत समझनी चाहिए और मज़दूर बस्तियों में इन संघी गुण्डों के मिथ्याप्रचार के ख़िलाफ़ बाकायदा अभियान चलाने चाहिए और आम मज़दूर आबादी को इसकी सच्चाई से अवगत कराना चाहिए।

इसके अलावा, साम्प्रदायिक तनाव को भड़काने के लिए आम हिन्दू आबादी में धर्मान्तरण का नकली हौव्वा भी खड़ा किया जा रहा है। योगी आदित्यनाथ से लेकर विहिप के अशोक सिंघल और तोगड़िया जैसे लोग मुसलमानों को सीधे-सीधे धमका रहे हैं कि उन्हें गुजरात और मुज़फ़्फ़रनगर को भूलना नहीं चाहिए

(पेज 15 पर जारी)

लू शुन के जन्मदिवस (25 सितम्बर) पर

गरीबों में संतोष का नुस्खा

एक शिक्षक अपने बच्चों को नहीं पढ़ाता, उसके बच्चों को दूसरे ही पढ़ाते हैं। एक डाक्टर अपना इलाज खुद नहीं करता, उसका इलाज कोई दूसरा ही डाक्टर करता है। लेकिन अपना जीवन जीने का तरीका हर आदमी को खुद खोजना पड़ता है। क्योंकि जीने की कला के जो भी नुस्खे दूसरे लोग बनाते हैं वे बारबार बेकार साबित होते हैं।

दुनिया में प्राचीन काल से ही शांति और चैन बनाए रखने के लिए गरीबी में संतोष पाने का उपदेश बड़े पैमाने पर दिया जाता है। गरीबों को बार-बार बताया जाता है कि संतोष ही धन है। गरीबी में संतोष पाने के अनेक नुस्खे तैयार किए गए हैं लेकिन उनमें से कोई पूरी तरह सफल नहीं हुआ है। अब भी रोज-रोज नए-नए नुस्खे बनाए जा रहे हैं। मैने अभी हाल में ऐसे दो नुस्खों को देखा है। वैसे ये दोनो भी बेकार ही हैं।

इनमें से एक नुस्खा यह है कि लोगों को अपने कामों में दिलचस्पी लेनी चाहिए। 'अगर आप अपने काम में दिलचस्पी लेना शुरू कर दें तो काम चाहे कितना ही मुश्किल क्यों न हो, आप खुशी से काम करेंगे और कभी नहीं थकेंगे।' अगर काम बहुत मुश्किल न हो तो यह बात सच हो सकती है। चलिए, हम खान मज़दूरों और मेहतरों की बात नहीं करते। आइए हम शंघाई के कारखानों में दिन में दस घण्टे से अधिक काम करने वाले मज़दूरों के बारे में बात करें। वे मज़दूर शाम तक थक कर चूर-चूर हो जाते हैं, और शाम को ही कारखानों में अधिक दुर्घटनाएं होती हैं। बार-बार यह उपदेश दिया जाता है कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन होता है। अगर आपको अपने शरीर की देखभाल की फ़ुर्सत नहीं मिलती तो आप काम में दिलचस्पी कहाँ से पैदा करेंगे। इस हालत में वही आदमी काम में दिलचस्पी ले सकता है जो जीवन से अधिक दिलचस्पी में दिलचस्पी रखता हो। अगर आप शंघाई के मज़दूरों से बात करें तो वे काम के घण्टे कम करने की ही बात करेंगे। वे काम में दिलचस्पी पैदा करने की बात कल्पना में भी नहीं सोच सकते।

इससे भी अधिक पक्का नुस्खा एक दूसरा है। कुछ लोग अमीरों और गरीबों की तुलना करते हुए कहते हैं कि आग बरसाने वाले गर्मी के दिनों में अमीर लोग अपनी पीठ बहते पसीने की धार की चिन्ता न करते हुए सामाजिक सेवा में लगे रहते हैं। गरीबों का क्या है? वे एक टूटी चटाई गली में बिछा देते हैं, रि अपने कपड़े उतारते हैं और चटाई पर बैठकर आराम से ठण्डी हवा खाते हैं। यह कितना सुखद है। इसी को कहते हैं चटाई समेटने की तरह दुनिया को जीतना। यह सब दुर्लभ और राज्यात्मक नुस्खा है लेकिन इसके बाद एक दुखद दृश्य सामने आता है। अगर आप शरद ;तु में गलियों से गुजर रहें हों तो देखेंगे कि कुछ लोग अपने पेट कसकर पकड़े हुए हैं और कुछ नीला तरल पदार्थ कै कर रहे हैं। ये कै करने वाले वे ही गरीब लोग हैं जो जिनके बारे में कहा जाता है कि वे धरती पर स्वर्ग का सुख लूटते हैं और चटाई समेटने की तरह दुनिया को जीतते हैं। मेरा ख्याल है कि शायद ही कोई ऐसा बेवक़ूफ़ होगा जो सुख का मौका देखकर भी उससे लाभ न उठाता हो। अगर गरीबी इतनी सुखद होती तो ये अमीर लोग सबसे पहले गली में जाकर सो जाते और गरीबों की चटाई के लिए कोई जगह न छोड़ते।

अभी हाल में ही शंघाई के हाई स्कूल की परीक्षा के छात्रों के निबन्ध छपे हैं। उनमें एक निबन्ध का शीर्षक है 'ठण्डक से बचाने लायक कपड़े और भरपेट भोजन'। इस लेख में कहा गया है कि "एक गरीब व्यक्ति भी कम खाकर और कम पहनकर अगर मानवीय गुणों का विकास करता है तो भविष्य में उसे यश मिलेगा। जिसका आधयात्मिक जीवन समृ) है उसे अपने भौतिक जीवन की गरीबी की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मानव जीवन की सार्थकता पहले में है, दूसरें में नहीं।"

इस लेख में केवल भोजन की जरूरत को ही नहीं नकारा गया है, कुछ आगे की बातें भी कही गयी हैं। लेकिन हाई स्कूल के छात्र के इस सुन्दर नुस्खे में विश्वविद्यालय के वे छात्र संतुष्ट नहीं है जो नौकरी खोज रहे हैं।

तथ्य नितांत निर्मम होते हैं। वे खोखली बातों के परखचे उड़ा देते हैं। मेरे विचार से अब वह समय आ गया है कि ऐसे पंडिताऊ बकवास को बन्द कर दिया जाये। अब किसी भी हालत में इसका कोई उपयोग नहीं है।

मुक्तिबोध के 50वें स्मृतिदिवस (11 सितम्बर) पर

पूँजीवादी समाज के प्रति

इतने प्राण, इतने हाथ, इतनी बुद्धि
इतना ज्ञान, संस्कृति और अंत:शुद्धि
इतना दिव्य, इतना भव्य, इतनी शक्ति
यह सौन्दर्य, वह वैचित्र्य, ईश्वर-भक्ति
इतना काव्य, इतने शब्द, इतने छन्द –
जितना ढोंग, जितना भोग है निर्बन्ध
इतना गूढ़, इतना गाढ़, सुन्दर-जाल –
केवल एक जलता सत्य देने टाल।
छोड़ो हाय, केवल घृणा औ' दुर्गन्ध
तेरी रेशमी वह शब्द-संस्कृति अन्ध
देती क्रोध मुझको, खूब जलता क्रोध
तेरे रक्त में भी सत्य का अवरोध
तेरे रक्त से भी घृणा आती तीव्र
तुझको देख मितली उमड़ आती शीघ्र
तेरे ह्रास में भी रोग-कृमि हैं उग्र
तेरा नाश तुझ पर क्रुद्ध, तुझ पर व्यग्र।
मेरी ज्वाल, जन की ज्वाल होकर एक
अपनी उष्णता में धो चलें अविवेक
तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ
तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ।

नरेन्द्र मोदी की रणनीति क्या है?

(पेज 14 से आगे)

और हिन्दुस्तान में दोयम दर्जे का नागरिक बनकर रहने के लिए तैयार हो जाना चाहिए। वे भारत को एक ऐसा "हिन्दू राष्ट्र" बनाना चाहते हैं जिसमें मज़दूरों और मेहनतकशों को देशी-विदेशी पूँजीपति जमकर और बेरोक-टोक लूटें! "हिन्दू राष्ट्र" को लूटने के लिए मोदी ने 15 अगस्त के अपने भाषण में दुनियाभर की कम्पनियों को भारत आने का आमन्त्रण दिया! रक्षा और खुदरा व्यापार में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की आज्ञा देते समय मोदी और उसके जैसे फासीवादियों के "हिन्दू राष्ट्र" का अपमान नहीं होता है! वास्तव में, संघ को मज़दूर वर्ग की एकता को तोड़ने और जनता के दुख-दर्द के लिए एक नकली दुश्मन तैयार करने के लिए कोई न कोई चाहिए। जर्मनी में हिटलर को यहूदी मिले थे और भारत में संघी गुण्डों को मुसलमान मिले हैं। यही इनके हिन्दुत्व की सच्चाई है। इसका असली मकसद है जनता की वर्ग एकजुटता को तोड़ना ताकि पूँजीपतियों की तानाशाही सुरक्षित रहे और जनता उसके ख़िलाफ़ लड़ न पाये; जनता कभी जान न पाये कि उसका असली दुश्मन पूँजीवाद है; जनता में मुसलमान हिन्दुओं को और हिन्दू मुसलमानों को अपना दुश्मन समझें और आपस में लड़ते-मरते रहें! वास्तव में, अमित शाह और योगी आदित्यनाथ जैसे लोगों को इसी साज़िश पर अमल के लिए भाजपा और संघ के संगठन और चुनावी योजना में प्रमुख ज़िम्मेदारियाँ दी गयी हैं। अमित शाह का भाजपा अध्यक्ष बनाया जाना इस बात का सूचक था कि अब भाजपा अपने आख़िरी मोहरे के तौर पर अपना पुराना कुत्सित, घृणित खेल खेलेगी; यानी कि साम्प्रदायिक दंगों और नरसंहारों का खेल। हम मज़दूरों को मोदी सरकार और संघ गिरोह की इस चाल को समझना चाहिए, अपनी बस्तियों और रिहायशी इलाकों में अपने बीच मज़बूत वर्ग एकजुटता कायम करनी चाहिए और संघी गुण्डों की साम्प्रदायिक तनाव फैलाने की हर साज़िश को नाकाम कर देना चाहिए।

निष्कर्ष

मोदी सरकार की पूरी रणनीति उपरोक्त तीन चालों के मेल से समझी जा सकती है। एक ओर मज़दूरों और आम मेहनतकश जनता के हितों पर खुला हमला करो; दूसरी तरफ़ इन हमलों के कारण घटने वाली लोकप्रियता को बचाने के लिए खोखले प्रतीकवाद का सहारा लो और मीडिया से अपने पक्ष में लहर बनाओ; और तीसरी ओर, जनता मोदी सरकार के पूँजीपरस्त क़दमों का कारगर विरोध न कर सके, इसके लिए उसे मज़हबी तौर पर बाँट दो! हिन्दुओं और मुसलमानों को आपस में लड़ाओ, उनके बीच तनाव पैदा करो! अफ़वाहों के ज़रिये तरह-तरह के डर पैदा करो, जैसे कि 'लव जिहाद' और धर्मान्तरण का भय और इसके बूते पर असली मुद्दों से ध्यान भटका दो, जैसे कि महँगाई, बेरोज़गारी, अपराध और भ्रष्टाचार के बारे में मोदी सरकार के वायदे, "अच्छे दिनों" के वे सपने जिसके प्रचार पर मोदी ने हज़ारों करोड़ रुपये बहा दिये।

लेकिन इतना तय है कि इन शातिराना चालों के बावजूद मोदी के ख़िलाफ़ देश में जनअसन्तोष बनना शुरू हो गया है। अभी तो मोदी सरकार के तीन महीने ही पूरे हुए हैं। अगर इसी रफ़्तार से उसकी स्वीकार्यता कम हुई तो पाँच वर्षों के बाद के संसद चुनावों में भाजपा की मिट्टी पलीद होने वाली है। लेकिन यह भी तय है कि इन पाँच वर्षों में मोदी देशी और विदेशी पूँजी को वे सेवाएँ दे जायेगा जिसके लिए मोदी को इन पूँजीपतियों ने प्रधानमन्त्री की नौकरी पर रखा है। इन पाँच वर्षों में देश में निजीकरण, उदारीकरण और भूमण्डलीकरण की नीतियों को मोदी सरकार जमकर लागू करेगी। यानी कि श्रम क़ानूनों को ख़त्म करना, दमन के लिए पुलिस-फ़ौज की मशीनरी को दुरुस्त करना और नये दमनकारी क़ानूनों को बनाना, पेट्रोल-डीज़ल आदि से सरकारी सब्सिडी को घटाना और उनकी कीमतों को पूरी तरह से बाज़ार के उतार-चढ़ाव पर छोड़ देना। इन सारी नीतियों का अर्थ होगा मज़दूर वर्ग के लिए भयंकर मुसीबतें – महँगाई, बेरोज़गारी, भुखमरी, कुपोषण और इनके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने पर लाठी-डण्डा-गोली-जेल की पूरी व्यवस्था। हम अगर बैठे रहेंगे तो निश्चित तौर पर कल हमारे पास अपने पैरों पर खड़े होने की ताक़त नहीं बचेगी। पाँच साल में मोदी वह सबकुछ करेगा जिसके लिए अम्बानी, अदानी, टाटा, बिड़ला आदि ने उसे भाड़े पर रखा है। लेकिन इन पाँच सालों में हमें भी इस व्यवस्था की कब्र खोदने की अपनी तैयारियों को तेज़ करना होगा। मज़दूरों के लिए सबसे बड़े ख़तरे यानी फासीवादी उभार का मुकाबला करने के लिए मज़दूरों को अपने संगठन को मज़बूत करना होगा और इन गुण्डों से सड़क पर निपटने की भी तैयारी करनी होगी। हमें याद रखना होगा कि पाँच वर्ष बाद अगर मोदी सरकार गिर जाती है और कांग्रेस या तीसरे मोर्चे की सरकार बनती है, तो भी वह सरकार मोदी द्वारा श्रम क़ानूनों में किये गये संशोधनों या मज़दूर वर्ग की लूट और शोषण के लिए किये गये इन्तज़ामात को वापस नहीं लेने वाली है। मोदी अपना काम कर जायेगा। आने वाली सरकारें फिर से थोड़ा "कल्याणकारी" मुखौटा पहनकर जनता के गुस्से को शान्त करेंगी। पूँजीवादी व्यवस्था के काम करने का यह तरीका है। कुछ समय में "कल्याणकारी" मुखौटा फिर से घिस जायेगा और किसी नये फासीवादी उभार की स्थितियाँ पैदा होंगी। यह कुचक्र चलता ही रहेगा, जब तक कि देश का मज़दूर वर्ग संगठित नहीं होता और अपनी क्रान्तिकारी पार्टी का निर्माण नहीं करता। मौजूदा समय हमारे लिए सबसे कठिन है, लेकिन यह हमारी तैयारियों के लिए सबसे सही समय भी है। इसलिए हमें वक़्त बरबाद नहीं करना चाहिए।

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2014-2016
प्रेषित डाकघर : आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथि : दिनांक 20 प्रत्येक माह

नरेन्द्र मोदी की जापान यात्रा और मेहनतकश जनता के लिए इसके निहितार्थ

नरेन्द्र मोदी जितना अपने भाषणों में इतिहास-विषयक भीषण अज्ञानता का प्रदर्शन करते रहते हैं, उतना ही अपनी भावावेगी मूर्खता के चलते समय-समय पर, अनजाने ही, पूँजीवादी जनवाद की असलियत भी उघाड़ते रहते हैं। पिछले दिनों जापान-यात्रा पर उनके साथ भारतीय पूँजीपतियों का एक बड़ा दल गया हुआ था। उनका परिचय जापानी पूँजीपतियों से कराते हुए मोदी ने कहा, "ये मेरे देश के बड़े हेवीवेट लोग हैं, इतने बड़े हेवीवेट कि यदि मुझे भी इनसे मिलना हो तो समय लेना पड़े। यह मेरा सौभाग्य है कि ये लोग मेरे साथ जापान आये हैं।"

मोदी ने बिल्कुल सही फरमाया। पूँजीवादी जनवादी व्यवस्था में सरकारें पूँजीपति वर्ग की 'मैनेजिंग कमेटी' होती है। इस 'मैनेजिंग कमेटी' के मुखिया की वास्तविक हैसियत पूँजीपतियों के टहलुए की ही होती है। आखिरकार सच्चाई मोदी के मुँह से फिसल ही पड़ी।

मोदी अपनी जापान-यात्रा से गदगदायमान हैं। जापान अगले पाँच वर्षों में भारत के निजी और सार्वजनिक क्षेत्र में 34 अरब डॉलर का निवेश करेगा। साथ ही, पारस्परिक सम्बन्धों को 'विशेष सामरिक वैश्विक भागीदारी' तक ले जाने के लिए मोदी और शिंजो एबे के बीच सहमति बनी है। सौ स्मार्ट सिटी बनाने, बुलेट ट्रेन चलाने और गंगा सफाई जैसी परियोजनाओं के लिए जिस भारी पूँजी की दरकार है, उसे पूरा करने के लिए देशी पूँजीपतियों को अधिकतम छूट और सुविधाएँ देकर लुभाने के बाद मोदी अब विदेशी पूँजी को लुभाने और कटोरा लेकर कर्ज़ माँगने के लिए निकल पड़े हैं। उनका पहला पड़ाव जापान है। इसके बाद वे आस्ट्रेलिया जायेंगे और फिर दक्षिण कोरिया, ब्रिटेन और पश्चिमी देशों का रुख करेंगे। यह बात जगजाहिर है कि जापानी अपने कर्ज़ों पर कड़ा ब्याज वसूलते हैं, पूँजी निवेश के लिए सस्ती से सस्ती दरों पर ज़मीनें, कच्चे माल की गारण्टी और अन्य सुविधाएँ माँगते हैं और श्रम क़ानूनों से ज़्यादा से ज़्यादा मुक्ति तथा मज़दूर आन्दोलनों पर कठोर सरकारी नियन्त्रण की माँग करते हैं। नरेन्द्र मोदी ने श्रम क़ानूनों में घनघोर मज़दूर-विरोधी सुधारों की घोषणा पहले ही कर दी है। देशी-विदेशी पूँजीपतियों को ज़मीनें और सरकारी ख़ज़ाने से ख़र्चा करके इन्फ्रास्ट्रक्चर मुहैया करने के तमाम इन्तज़ामों की घोषणाएँ पहले ही की जा चुकी हैं। 'पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप' और 'बनाओ-चलाओ-सौंपो' की सभी स्कीमों के अन्तर्गत, ज़रूरी ख़र्चों का बोझ सरकारी खजाने के मार्फ़त जनता पर पड़ेगा, करोड़ों लोगों की जमीनें कौड़ियों के मोल लेकर उन्हें देशी-विदेशी कम्पनियों को सौंप दिया जायेगा तथा विनिवेश के जरिए पूँजी जुटाने के नाम पर जनता की गाढ़ी कमाई से खड़े सरकारी उपक्रमों को औने-पौने दामों पर देशी-विदेशी पूँजीपतियों को सौंपने की प्रक्रिया और तेज़ कर दी जायेगी। ज़ाहिर है कि लम्बे समय से मन्दी और ठहराव का संकट झेल रहे जापानी साम्राज्यवादियों के लिए पूँजी निवेश के लिए इतनी अनुकूल परिस्थितियाँ बिल्ली के भाग्य से छींका टूटने के समान हैं और उन्होंने अभूतपूर्व निवेश के लिए ख़ुशी-ख़ुशी हामी भर दी है। जापानी पूँजीपतियों की हर समस्या का चुटकी बजाते समाधान हो, इसके लिए नरेन्द्र मोदी ने अपने कार्यालय में 'जापान प्लस' नाम से नया प्रकोष्ठ खोलने की घोषणा भी कर दी है।

जाहिर है कि आने वाले दिनों में 'अमीरों के भारत' की इस तरक्की की 'मेहनतकशों का भारत' भारी कीमत चुकाने वाला है। जापानी कम्पनियाँ मज़दूरों की हड्डियाँ निचोड़ने में कितनी बेरहम होती हैं, श्रम क़ानूनों को किस प्रकार वे ताक पर धर देती हैं और इन कम्पनियों के हड़ताली मज़दूरों को कुचलने में भारत सरकार किस प्रकार बर्बर दमन का रुख अपनाकर जापानी साम्राज्यवाद की सेवा करती है, यह पिछले वर्षों में होण्डा, मारुति और कई अन्य जापानी कम्पनियों में चले मज़दूर संघर्षों के दौरान देखा जा चुका है। आने वाले दिनों में मज़दूरों के अतिशोषण और विरोध में उठने वाली हर आवाज़ के बर्बर दमन का पुख़्ता इन्तज़ाम मोदी सरकार कर चुकी है और मोदी टोक्यो जाकर इसकी पक्की गारण्टी भी दे आये हैं।

नवउदारवादी नीतियों पर बुलेट ट्रेन की रफ़्तार से अमल करते हुए मोदी दरअसल भारत को चीन की तरह 'ग्लोबल मैन्युफैक्चरिंग हब' बनाने का सपना पाले हुए हैं। दोनों देशों की उत्पादक शक्तियों के विकास के स्तर और पूँजी की शक्ति के भारी अन्तर को देखते हुए मोदी की महत्वाकांक्षा शेखचिल्ली के सपने के समान लगती है, फिर भी मोदी सरकार इसे पाने के लिए किसी भी हद से गुज़र जाना चाहती है। सच्चाई यह है कि मैन्यूफैक्चरिंग में विदेशी पूँजी को आकृष्ट करने तथा उसके साथ सहकार और प्रतिस्पर्द्धा करने के मामले में चीन की एक-चौथाई क्षमता हासिल करने के लिए भी भारतीय पूँजीवाद को चीनी पूँजीपति वर्ग की तुलना में चौगुना अधिक बर्बर दमनकारी और सर्वसत्तावादी रुख अपनाना पड़ेगा। मोदी सरकार इसके लिए कटिबद्ध है। मज़दूर संघर्षों को कुचलने तथा हिन्दुत्ववाद की लहर फैलाकर मेहनतकश जनता की जुझारू एकजुटता को तोड़ते रहने की कुटिल परियोजनाओं पर अमल की तैयारी पूरी हो चुकी है। विडम्बना यह है कि मोदी सरकार के इन तमाम भगीरथ-प्रयासों के बावजूद, विश्व पूँजीवादी व्यवस्था में भारतीय पूँजीपति वर्ग शीर्ष पर आसीन साम्राज्यवादी शक्तियों का 'जूनियर पार्टनर' ही बना रहेगा, जबकि चीन आज तेजी से एक नयी साम्राज्यवादी शक्ति बन रहा है और पश्चिमी साम्राज्यवादी शक्तियों से बराबरी की होड़ करने के लिए धुरी और ब्लॉक संगठित करने के खेल में लगा हुआ है।

इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि अन्तर साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा और नये वैश्विक ध्रुवीकरणों का लाभ उठाकर सस्ती से सस्ती शर्तों पर पूँजी, ऋण और तकनोलॉजी हासिल करने में, सस्ती से सस्ती कीमतों पर हथियार, भारी मशीनें, परिवहन एवं यात्री विमान आदि खरीदने में, दुनिया के तेल क्षेत्रों में व कुछ पिछड़े देशों में पूँजी निवेश के अवसर ढूँढ़ने में तथा अपने विकल्पों का विस्तार करने में भारतीय पूँजीपति वर्ग भी बेहद चतुराई से अपनी चालें चल रहा है तथा हर अनुकूल अवसर का लाभ उठा रहा है। एक ओर अमेरिका-ब्रिटेन धुरी आज भी भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक साझीदार है और इज़रायली हथियारों का भारत सबसे बड़ा खरीदार है, दूसरी ओर रूस के साथ भी रक्षा और अन्य मामलों में उसका घनिष्ठ सहकार है। जापान, दक्षिण कोरिया, जर्मनी और फ़्रांस के साथ ही तीसरी दुनिया के सापेक्षतः विकसित उत्पादक शक्तियों वाले देशों - ब्राजील, अर्जेण्टीना, दक्षिण अफ़्रीका आदि के साथ भी पूँजी, तकनोलॉजी और ज़रूरत की उन्नत चीजों (जैसे ब्राजील से एक विशेष हेलिकॉप्टर) के लिए भारत समझौते करता रहता है। तेल-गैस की अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए भारतीय पूँजीपति वर्ग रूस और ईरान के साथ अमेरिका और उसके गुट के तेल धनी अरब देशों के अन्तरविरोधों का चतुराई से लाभ उठाता है और साथ ही दूसरी ओर वेनेजुएला के तेल क्षेत्रों में निवेश के लिए समझौते भी करता है।

'ब्रिक्स' के गठन और अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के समान्तर 'ब्रिक्स' के विकास बैंक के निर्माण के पीछे रूस और चीन के साम्राज्यवादियों का उद्देश्य अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा के नये दौर में पश्चिमी साम्राज्यवादी शक्तियों के शिविर को तथा अमेरिका की विश्व-चौधराहट को चुनौती देने के लिए एक मोर्चा खोलना है। विश्व बाजार में पैठ तथा विश्व स्तर पर निचोड़े गये अधिशेष में अपनी भागीदारी बढ़ाने के दूरगामी उद्देश्य से भारत भी 'ब्रिक्स' का एक हिस्सा है, दूसरी ओर 'ब्रिक्स' में शामिल होने के पीछे उसकी मंशा अमेरिका, यूरोपीय देशों और जापान से पूँजी, ऋण एवं तकनोलॉजी लेने के मोलतोल में दबाव बनाने की है। 'ब्रिक्स' के भीतर असली धुरी रूस और चीन की ही बनती है। भारत, ब्राजील, दक्षिण अफ़्रीका दोहरे उद्देश्यों से इसमें शामिल हैं और रूस-चीन के ढुलमुल दोस्त हैं। बल्कि रूस और चीन की अधिक करीबी 'ब्रिक्स' के बाहर के ईरान, वेनेजुएला, क्यूबा आदि देशों से बनती है। उक्रेन को छोड़कर, मध्य एशिया के (पूर्व सोवियत संघ के घटक) ज़्यादातर देश तो रूसी खेमे के साथ हैं ही।

यह अनायास नहीं कि 'ब्रिक्स' देशों के सम्मेलन के तुरत बाद नरेन्द्र मोदी जापान गये और वहाँ से जो चाहते थे, उसमें से ज़्यादातर हासिल कर लाये। अब आस्ट्रेलिया से यूरेनियम सौदे और अन्य व्यापार समझौतों की पारी है। इस स्थिति में निकट भविष्य में रूस और चीन से भी मोलतोल में आसानी होगी।

जापान से निकटता बढ़ाने के पीछे भारतीय पूँजीपति वर्ग की एशिया-प्रशांत क्षेत्र में क्षेत्रीय प्रतिस्पर्द्धा में प्रभावी भूमिका निभाने की आकांक्षा और दक्षिण एशिया में उसकी क्षेत्रीय विस्तारवादी महत्वाकांक्षा की भी एक अहम भूमिका है। समूचे एशिया-प्रशांत क्षेत्र में चीन का बढ़ता प्रभाव जापान, आस्ट्रेलिया, दक्षिण कोरिया और वियतनाम के साथ ही भारत के लिए भी गम्भीर चिन्ता का विषय है। चीन-जापान और चीन-वियतनाम के साथ ही चीन-भारत के बीच भी सीमा-विवाद है। चीन द्वारा तिब्बत से नेपाल और भूटान की सीमा तक रेल लाइन बनाना, नेपाल, बर्मा और श्रीलंका में बढ़ता चीनी निवेश और इनके साथ बढ़ती चीनी घनिष्ठता भारतीय पूँजीपति वर्ग के लिए परेशानी का सबब है, क्योंकि इस दक्षिण एशियाई भूभाग में चीन से कम ताकत के बावजूद, काफी हद तक भारत की चौधराहट चलती रही है। पाकिस्तान के साथ चीन की निकटता ग्वादर बन्दरगाह की निर्माण-परियोजना के बाद भारत के लिए और गम्भीर चिन्ता का विषय बन गयी है। इसी स्थिति के प्रतिसंतुलन के लिए नेपाल और भूटान जैसे दो छोटे पड़ोसियों से रिश्तों की डोर मजबूत करने के लिए वहाँ की यात्रा के बाद, नरेन्द्र मोदी ने अपना अगला पड़ाव जापान को बनाया तथा अपने विदेश मन्त्री को वियतनाम भेजा। भावी आस्ट्रेलिया- यात्रा भी चीन की प्रति-घेरेबन्दी की इसी रणनीति से काफी हद तक जुड़ी हुई है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि मोदी की जापान-यात्रा आम मेहनतकशों को रौंदती हुई नवउदारवाद की बुलेट ट्रेन दौड़ाने की मोदी की परियोजना का एक महत्वपूर्ण मुकाम है। साथ ही, पूरे विश्व स्तर पर फिर से उभरती अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा के नये दौर में ज़्यादा से ज़्यादा प्रभावी ढंग से अपने हित साधने के लिए, तथा एशिया-प्रशान्त क्षेत्र में चीन की प्रभावी बढ़त की काट करने के लिए भारतीय पूँजीपति वर्ग जिस वैश्विक कार्य-योजना पर अमल कर रहा है, मोदी की जापान-यात्रा उसी का एक हिस्सा है।

– कविता कृष्णपल्लवी

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006